लक्ष्य और कार्य

लेखक की प्रमुख कृतियाँ

विचार सूत्र
एकात्म मानववाद : एक अध्ययन
कम्युनिज्म अपनी ही कसौटी पर
पुरानी नींव नया निर्माण
प्रचार तन्त्र
ध्येय पथ पर किसान
Focus on the Socio-economic Problems
Perspective
The Great Sentinel
His Legacy Our Mission
Modernisation without Westernisation

लक्ष्य और कार्य

दत्तात्रेय बापूराव ठेंगड़ी
(उपाख्य दत्तोपंत ठेंगड़ी)

भारतीय मजदूर संघ
केन्द्रीय कार्यालय, नई दिल्ली

प्रकाशक :
भारतीय मजदूर संघ
केन्द्रीय कार्यालय,
२४२६, चूना मण्डी, तिलक गली, पहाड़गंज
नई दिल्ली-११००५५

प्रथम संस्करण { युगाब्द ५०८८
मई, १९८६

मूल्य : १२.००

मुद्रक :
जागृति मुद्रण केन्द्र
द्वारा **दुर्गा मुद्रणालय,**
सुभाष पार्क एक्सटेंशन, शाहदरा,
दिल्ली-११००३२

मनोगत

किसी भी लक्ष्य की प्राप्ति का माध्यम है—व्यक्ति। समान लक्ष्य और प्रेरणा से एकत्र आकर कार्य करने वाले व्यक्तियों के समूह को संगठन की संज्ञा दी जाती है। संगठन को जीवन्त और गतिमान बनाये रखने के लिये कार्यक्रमों की रचना और उन कार्यक्रमों के माध्यम से व्यक्तियों के मन पर सुसंस्कारों का अंकन आवश्यक होता है। ध्येय समर्पित, संस्कार सम्पन्न, निजी और निहित स्वार्थों से मुक्त कार्यकर्ता समूह और संयमी, धैर्यवान, अहंकारमुक्त, चरित्र-शील सम्पन्न, दूरदर्शी, आशा-विश्वास से भरपूर, संकटों और परिणामों का पूर्वानुमान, सबके आगे-आगे और सबके अपने मार्गदर्शक, मित्र, सखा-बन्धु के रूप में चलने वाला, अनथक, सतत साधनारत, श्रेय लूटने की लालसा से दूर और **'इदं न मम'** की अवधारणा से रचा-बसा नेतृत्व किसी लक्ष्य की प्राप्ति और कार्य की सफलता की प्रथम शर्त है।

यह पुस्तक सामाजिक और सार्वजनिक क्षेत्र में कार्य कर रहे नेताओं और कार्यकर्ताओं में इन्हीं और इन जैसी अन्य शर्तों को पूर्ण करने का एक आह्वान है—और कुछ नहीं। न इससे कम और न इससे अधिक।

श्री दत्तोपंत ठेंगड़ी इस पुस्तक के लेखक नहीं, चिन्तक हैं। यह पुस्तक लिखी नहीं, बोली गयी है। इसमें समाहित सामग्री लेख नहीं, भाषणों का संकलन है। २९ अक्तूबर से २ नवम्बर, १९८४ में इन्दौर में आयोजित भारतीय मजदूर संघ के कार्यकर्ताओं के पाँच दिवसीय अभ्यासवर्ग में व्यक्त किये गये विचारों ने ही इस पुस्तक का रूप धारण किया है।

बोलने और लिखने में अन्तर होना स्वाभाविक है। अव्यवस्थित रूप में प्राप्त टंकित भाषणों का सम्पादन सरल कार्य नहीं था। सभी बातों को उनके सन्दर्भ के साथ ठीक-ठीक जोड़ पाने में भी अल्पज्ञता बाधक बनी। फिर भी इस पुस्तक में जो कुछ आ पाया है वह 'बहुत कुछ' है। यदि कहीं कोई भ्रम या अप्रासंगिकता मिले तो उसे श्री ठेंगड़ी जी के विचारों की नहीं, सम्पादक और प्रकाशक की कमी माना जाय।

श्रीराम नवमी
संवत् २०४३ विक्रमी,
१७ अप्रैल, १९८६

जी० प्रभाकर घाटे
महामन्त्री, भारतीय मजदूर संघ

लेखक परिचय

इस पुस्तक के सर्जक श्री दत्तोपंत ठेंगड़ी, एम. ए., एल्-एल्. बी. से देशवासी सुपरिचित हैं। पचास साल से भी अधिक समय से ये देश के सार्वजनिक और समाज जागरण के क्षेत्र में सक्रिय हैं। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ इनकी प्रेरणा का मूल स्रोत है। १९३५ से १५ वर्ष की किशोरावस्था में इन्होंने वर्धा जिले के आर्वी तालुका की वानरसेना के अध्यक्ष के नाते अपनी सार्वजनिक जीवन यात्रा का विधिवत् शुभारम्भ किया था। १९३६-३८ तक ये हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन आर्मी के साथ भी सक्रिय रूप से जुड़े रहे।

रहन-सहन की सरलता, अध्ययन की व्यापकता, चिन्तन की गहराई, ध्येय के प्रति समर्पण, लक्ष्य की स्पष्टता, ध्येय साधना का सातत्य और कार्य की सफलता का विश्वास श्री ठेंगड़ी का व्यक्तित्व रूपायित करते हैं। तीस से अधिक पुस्तकों और पुस्तिकाओं के माध्यम से देश के शाश्वत और तात्कालिक विषयों का मौलिक विवेचन अब तक कर चुके हैं। श्री ठेंगड़ी के समर्पित जीवन और ज्वलन्त व्यक्तित्व के यदि कुछ सोपान गिनाने ही हों तो वे इस प्रकार हैं—

१९२० —१० नवम्बर को आर्वी (जिला वर्धा) में जन्म।
१९३५ —आर्वी तालुका की वानर सेना के अध्यक्ष।
१९३६-३८—हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन आर्मी से सम्बद्ध।
१९४२ —अध्यक्ष, केरल प्रदेश राष्ट्रभाषा प्रचार सभा।
—रा० स्व० संघ के प्रचारक, उत्तरखेड़ा (केरल)।
१९४८-४९—रा० स्व० संघ के असम व बंगाल प्रान्त प्रचारक।
१९४९ —संस्थापक सदस्य, अ० भा० विद्यार्थी परिषद।
१९४९-५२—अध्यक्ष, अ० भा० वि० प०, विदर्भ प्रदेश।
१९५०-५१—संगठन मन्त्री, इंटक, मध्य प्रदेश।
१९५१-५३—संगठन मन्त्री, भारतीय जनसंघ, मध्य प्रदेश।
१९५५ —भारतीय मजदूर संघ की स्थापना की।
१९५६-५७—संगठन मन्त्री, भारतीय जनसंघ, दक्षिणांचल।
१९६४-७६—सदस्य, राज्यसभा।
१९६८-७०—सदस्य, राज्यसभा उपाध्यक्ष मण्डल।
—सदस्य, जन-उद्योग समिति।
१९६८-६९—संयोजक, केन्द्रीय मजदूर संगठनों की राष्ट्रीय समन्वय समिति।

१९७४ —सदस्य, अध्यक्ष मण्डल, मजदूर यूनियनों का राष्ट्रीय सम्मेलन।
१९७५ — संयोजक, राष्ट्रीय श्रम संघर्ष समिति।
१९७६ —सचिव, लोक संघर्ष समिति (आपात् काल में)।
१९७९ —भारतीय किसान संघ की स्थापना।

विदेश

१९६९ —संसदीय शिष्ट मण्डल के सदस्य के नाते रूस गमन।
१९७७ —द्वितीय रंगभेद विरोधी अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन, जनेवा में प्रतिनिधि।
१९७९ —अमरीका सरकार के निमन्त्रण पर वहाँ के ट्रेड यूनियन आन्दोलन के अध्ययन हेतु अमरीका यात्रा।
१९८५ —३ से १९ अप्रैल, ऑल चायना फेडरेशन ऑफ ट्रेड यूनियन्स के निमन्त्रण पर भारतीय मजदूर संघ का शिष्ट मण्डल लेकर चीन गये।
—दिसम्बर ४ से १३, इण्टरनेशनल लेबर आर्गनाइजेशन (I.L.O.) की जकार्ता में दसवीं रिजनल कान्फ्रेंस में प्रतिनिधि।

अन्य सम्बन्धित संस्थाएँ

अखिल भारतीय श्री माँ जन्म शताब्दी समारोह समिति	उपाध्यक्ष
भारतीय शिक्षण मण्डल	संरक्षक सदस्य
भारतीय बौद्ध महासभा	सहयोगी सदस्य
भारतीय आदिम जाति सेवक संघ	सहयोगी सदस्य
कर्मवीर हरिदास जी आवले स्मारक समिति	परामर्शदाता
पं० दीनदयाल उपाध्याय स्मारक समिति	सदस्य
भारत मंगोलिया सांस्कृतिक समिति	सदस्य
श्री अरविंदु सोसायटी	सदस्य
भारतीय खेतीहर मजदूर संघ	परामर्शदाता
विश्व हिन्दु परिषद	परामर्शदाता
पशु हिंसा विरोधी समिति	आजीवन सदस्य
अखिल भारतीय विमुक्त जाति सेवक संघ	आजीवन सदस्य
वनवासी कल्याण परिषद	सदस्य कार्यकारिणी
भारतीय साहित्य परिषद	सदस्य कार्यकारिणी
केन्द्रीय नागरिक परिषद	सदस्य
पं० दीनदयाल उपाध्याय जन्मभूमि स्मारक समिति, नगला चन्द्रभान (मथुरा)	सदस्य

अनुक्रमणिका

१. भारतीय मजदूर संघ ६

२. मजदूर आन्दोलन को एक नया आयाम २३

३. कार्य और कार्यकर्ता ३६

४. गन्तव्य ५३

५. सावधान ७०

६. समाधान ८१

१

भारतीय मजदूर संघ

यह हमारा अखिल भारतीय स्वाध्याय और अभ्यास वर्ग का शुभारम्भ है। स्वाध्याय के विषय में सामान्य रूप से लोगों की ऐसी एक कल्पना है कि जब तक डिग्री-डिप्लोमा प्राप्त नहीं होता तब तक तो स्वाध्याय करना पड़ता है, किन्तु बाद में स्वाध्याय की कोई आवश्यकता नहीं। लेकिन अपनी परम्परा में जो दीक्षान्त भाषण (कनवोकेशन ऐड्रेस) का प्रावधान किया हुआ है, उसमें परीक्षा में उत्तीर्ण होकर घर जाने वाले विद्यार्थियों के लिए स्पष्ट रूप से यह कहा गया है कि स्वाध्यायान्मा प्रमदः। स्वाध्याय करने में कभी भी पीछे मत रहो, चूको मत। इसका मतलब है जीवन-भर स्वाध्याय करते रहना चाहिए, तभी जीवन सफल होता है। हम कार्यकर्ताओं पर भी यही बात लागू है और इसी दृष्टि से बीच-बीच में हम लोग स्वाध्याय वर्ग का आयोजन करते हैं।

भारतीय मजदूर संघ और अन्य श्रम संस्थाओं में अन्तर

अब यह प्रश्न उठता है कि यह स्वाध्याय वर्ग किसका है ? उत्तर स्पष्ट है—भारतीय मजदूर संघ के कार्यकर्ताओं का है। भारतीय मजदूर संघ की यह विशेषता है कि यहाँ हर एक कार्यकर्ता भारतीय मजदूर संघ का कार्यकर्ता होता है। वह अपनी फेडरेशन और यूनियन का भी अप्रत्यक्ष रूप से भारतीय मजदूर संघ के माध्यम से ही कार्यकर्ता होता है। हम जानते हैं कि बाकी केन्द्रीय श्रम संस्थाओं में स्थिति इसके विपरीत रहती है। वहाँ हर एक कार्यकर्ता सर्वप्रथम अपनी यूनियन का कार्यकर्ता हुआ करता है और चूँकि उसकी यूनियन किसी-न-किसी केन्द्रीय श्रम संस्था से सम्बद्ध है, इसलिए उसकी अपनी यूनियन और उसके अपने महासंघ के माध्यम से (Through his union, Through his federation) वह केन्द्रीय श्रम संस्था का अप्रत्यक्ष कार्यकर्ता है। माने अपनी यूनियन, फेडरेशन का प्रत्यक्ष कार्यकर्ता और उसके द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से अपनी केन्द्रीय श्रम संस्था का कार्यकर्ता—ऐसी रचना अन्य संस्थाओं में है। जबकि हमारे यहाँ इससे उल्टी रचना है कि हर एक कार्यकर्ता प्रत्यक्ष रूप से सर्वप्रथम भारतीय मजदूर संघ का कार्यकर्ता है और चूँकि भारतीय मजदूर संघ से सम्बद्ध यूनियन या फेडरेशन उसकी है, इसलिए भारतीय मजदूर संघ के माध्यम से अप्रत्यक्ष रूप से वह अपनी फेडरेशन और यूनियन का कार्यकर्ता हुआ करता है। इसलिए इस दृष्टि से यहाँ जितने भी कार्यकर्ता आए हैं वे यद्यपि किसी न किसी यूनियन के पदाधिकारी या कार्यकर्ता होंगे, लेकिन वे कार्यकर्ता हैं भारतीय मजदूर संघ के। हम सब लोग अपनी यह रचना जानते हैं। इस प्रकार भारतीय मजदूर संघ का कार्यकर्ता, भारतीय मजदूर संघ के स्वरूप के कारण दोहरी जिम्मेदारी रखता है।

भारतीय मजदूर संघ मजदूरों का संगठन है, ट्रेड यूनियन है। यह राष्ट्रवादी मजदूर संगठन है। यह विशुद्ध मजदूर संगठन है। इसका मतलब होता है कि वह संगठन जो मजदूरों के लिए है, मजदूरों का है, मजदूरों द्वारा चलाया गया है। यह एक गैर-राजनीतिक मजदूर संगठन है।

कार्यकर्ता की दोहरी जिम्मेदारी

राष्ट्रहित की चौखट के अन्तर्गत, मजदूरों के हित का एकमात्र उद्देश्य सामने रखकर काम करने वाला संगठन होने के कारण

भारतीय मजदूर संघ के कार्यकर्ता की दो तरफा जिम्मेदारी हो जाती है। राष्ट्र के सामने वह मजदूरों का प्रतिनिधित्व करता है। बताता है कि मजदूरों का कहना क्या है ? उनकी तकलीफें क्या हैं ? माँगें क्या हैं ? आकांक्षाएँ क्या हैं ? राष्ट्र के सामने वह मजदूरों का प्रतिनिधि है तो मजदूरों के सामने वह राष्ट्र का प्रतिनिधि है जो मजदूरों को बताता है कि राष्ट्र के कष्ट क्या हैं ? राष्ट्र की आकांक्षाएँ क्या हैं ? राष्ट्र के लिए क्या-क्या करना आवश्यक है ? इन दोनों तरह की जिम्मेदारियों का निर्वाह करना बहुत कठिन काम है। केवल अपनी यूनियन के सदस्यों के लिए मजदूरों की आर्थिक माँगों को लेकर कुछ उकसाने वाले भाषण देना सरल काम है। लेकिन भारतीय मजदूर संघ के कार्यकर्ता का काम बहुत कठिन है, क्योंकि राष्ट्र के सामने मजदूरों का प्रतिनिधित्व और मजदूरों के सामने राष्ट्र का प्रतिनिधित्व वह कर रहा है और इस दृष्टि से हमारे कार्यकर्ताओं को बार-बार स्वाध्याय वर्ग की आवश्यकता प्रतीत होती है।

एकात्म मानव दर्शन

हम यह जानते हैं कि भारतीय मजदूर संघ भारतीय है। 'भारतीय' केवल एक भौगोलिक शब्द नहीं है। यह सांस्कृतिक शब्द है। एक संस्कृति, एक परम्परा है। इस दृष्टि से एक भारतीय विचार पद्धति भी है। पश्चिम की तुलना में इसकी सर्वप्रथम विशेषता यह है कि भारतीय विचार टुकड़ों-टुकड़ों में (Compartmentalised) नहीं है, यह एकात्म (Integrated) है। यहाँ समग्र रूप से विचार होता है। अत: मजदूरों का भी विचार हम टुकड़ों-टुकड़ों में नहीं करते। सम्पूर्ण राष्ट्ररूपी शरीर के अंग के रूप में हम मजदूरों का विचार करते हैं। इसी तरह राष्ट्र का भी विचार हम टुकड़ों-टुकड़ों में, नहीं करते। हमारे देश में यह सनातन विचार चलता आया है कि मनुष्य के चैतन्य का अखण्ड विकास होना चाहिए। मनुष्य जब पैदा होता है तो उसको स्वयं के अलावा और किसी का ध्यान नहीं रहता और जब बड़ा होता है तो माँ-बाप, भाई तथा अपने परिवार के साथ वह एकात्म होता है। चेतना का और विकास होता है तो समाज के साथ एकात्म होता है, चेतना और विकसित होती है तो वह राष्ट्र के साथ एकात्म होता है और इस चेतना का विकास होते-होते वह इस

स्थिति में पहुँच जाता है कि सम्पूर्ण मानवता के साथ वह अपने को एकात्म समझने लगता है। फिर इससे भी ऊपर जाकर एक दिन सम्पूर्ण चराचर विश्व के साथ वह एकात्म होता है। उसे 'स्वदेशो भुवनो त्रयम्' की अवस्था प्राप्त हो जाती है। वह वर्ल्ड सिटीजन ही नहीं, यूनिवर्सल सिटीजन, 'वैश्विक नागरिक' बन जाता है। इस तरह से व्यक्ति से लेकर विश्व तक चेतना का विकास होना चाहिए। इस प्रकार का एकात्म दर्शन, जिसको पण्डित दीनदयाल जी ने एकात्म मानव दर्शन कहा, हमारा सनातन दर्शन होने के कारण हमारा विचार टुकड़ों-टुकड़ों में नहीं है।

राष्ट्र और मजदूर : एकात्म

राष्ट्रवाद और अन्तर्राष्ट्रीयवाद में हम भेद नहीं समझते। क्योंकि मनुष्य की चेतना के विकास के एक स्तर पर वह राष्ट्रवाद है, और उससे भी अधिक विकास होता है तो वह अन्तर्राष्ट्रीय विचार करता है। यह चेतना के विकासक्रम की एक के बाद दूसरी सीढ़ी है। यह परस्पर विरोधी बातें नहीं हैं, यद्यपि पश्चिम के लोग इसे परस्पर विरोधी बातें मानते हैं, क्योंकि पश्चिम के राष्ट्र परिपक्व राष्ट्र नहीं, बच्चा राष्ट्र हैं। बच्चा उछल-कूद कर सकता है लेकिन परिपक्वता अनुभव के आधार पर आती है। हम लोग टुकड़ों-टुकड़ों में विचार नहीं करते हैं। हमारा विचार समग्रता के साथ एकात्म होने के कारण हम यह जानते हैं कि सम्पूर्ण राष्ट्र के साथ मजदूरों का हित भी एकात्म है। राष्ट्र खड़ा रहेगा तो मजदूर गिर नहीं सकता। राष्ट्र गिर जाएगा तो मजदूर खड़ा नहीं रह सकता। वैसे ही जब तक मजदूर खड़ा है तब तक वह राष्ट्र को गिरने नहीं देगा। मजदूर गिर जाएगा तो राष्ट्र को कौन बचाएगा, यह सवाल खड़ा हो सकता है। राष्ट्र और मजदूर एक दूसरे के साथ इतना एकात्म हैं। भारतीय मजदूर संघ का कार्यकर्ता इन बातों का ध्यान रखकर काम करता है। इस कारण भारतीय मजदूर संघ अन्य मजदूर संघों से भिन्न और विशिष्ट है। यहाँ यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि भारतीय मजदूर संघ की क्या-क्या विशेषताएँ हैं। यह अपने ढंग का एक अनोखा संगठन है। यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त होगा।

आरम्भिक आशंकाएँ

शुरू-शुरू में भोपाल (मध्य प्रदेश) में भारतीय मजदूर संघ का निर्माण हुआ। जब इस कार्य का आरम्भ हुआ तो अन्य ट्रेड यूनियन के कुछ लोग काफी नाराज हो गए। वहाँ उन दिनों कम्युनिस्टों का प्रभाव था। हमारे कम्युनिस्ट मित्र ऐसा कहा करते थे कि भाई आप लोगों को तो यह काम जमने वाला नहीं। यह काम निकर पहनने का काम नहीं है। इसमें बहुत कुछ अध्ययन करना पड़ता है, बहुत कुछ बातें सीखनी पड़ती हैं। आप लोगों ने तो जीवन में कभी ये काम किए नहीं, इसलिए आपको यह काम जमेगा नहीं। हाँ, इतना है कि आप खुद तो खाएँगे नहीं, हमको भी नहीं खाने देंगे। केवल हमको तकलीफ देने का काम आप कर सकते हैं। क्योंकि आप यह बर्दाश्त नहीं कर पा रहे हैं कि कम्युनिज्म इस देश में पनपे और इसलिए कम्युनिस्टों का जो क्षेत्र है—श्रम क्षेत्र, मजदूर क्षेत्र—इस क्षेत्र में आप लोगों ने यूनियनें खोलने का विचार किया है। वास्तव में श्रमिक क्षेत्र में आप कुछ करने वाले नहीं। कुछ कर सकने की आपकी क्षमता भी नहीं है। केवल कम्युनिज्म की टाँग खींचने के लिए आपने यह उद्योग शुरू किया।

कम्युनिज्म : विशुद्ध भौतिकतावादी सिद्धान्त

उसके जवाब में हम लोग कहते थे, भाई, यह गलत विचार है। यह सच है कि हम कम्युनिज्म के विरोधी हैं। हम कम्युनिज्म का विरोध इसलिए करते हैं कि यह एक विशुद्ध भौतिकतावादी (मैटीरियलिस्टिक) सिद्धान्त है। इससे मनुष्य का कल्याण होने वाला नहीं। लेकिन हम इसे इतना महत्त्वपूर्ण काम नहीं मानते कि कम्युनिस्ट या कम्युनिज्म की टाँग खींचने के लिए हम अपना जीवन लगा दें।

नयी टैक्नालॉजी द्वारा कम्युनिज्म का विनाश

इसका एक दूसरा भी कारण है वह यह कि कम्युनिज्म को नष्ट करने के लिए हमारी आवश्यकता ही नहीं है। कई ऐसी बातें हैं जिनके कारण वह स्वयं ही नष्ट हो रहा है जैसे, पश्चिमी देशों की तकनीक (टैक्नालॉजी)। पश्चिमी देशों की टैक्नालॉजी कम्युनिस्टों को बहुत बड़ा झटका दे रही है। हम यह जानते हैं कि अब द्वितीय

औद्योगिक क्रान्ति (सैकेण्ड इण्डस्ट्रियल रिवोल्यूशन) हो रही है। उद्योगोपरान्त समाज (पोस्ट-इण्डस्ट्रियल सोसायटी) पश्चिम के कुछ देशों में निर्माण हो रहा है, नयी टैक्नालॉजी वहाँ आ रही है। (इस टैक्नालॉजी के विषय में अपने देश के परिप्रेक्ष्य में हमारे विचार क्या हैं, यह एक अलग बात है।) उसके कारण जो औद्योगिक समाज की स्ट्रेटिजिक पोजीशन और पिओटल पोजीशन का हिस्सा था, वह बदल गया है। अर्द्धकुशल (Semi-skilled) वर्कर और इंजीनियर पिओटल पोजीशन में है। नयी टैक्नालॉजी आने के साथ ही साइंटिस्ट और टैक्नालॉजिस्ट, जिनको वहाँ 'नालेज क्लास' कहा जाता है, पिओटल पोजीशन में आ जाएँगे। आज हम जिनको इधर चतुर्थ श्रेणी का कर्मचारी कहते हैं उनकी संख्या बहुत घट जाएगी। यूनाइटेड स्टेट्स ऑफ अमरीका के बारे में अन्दाजा है कि सन् २००० तक वहाँ ब्लू कालर वर्कर की संख्या दस प्रतिशत से भी कम रह जाएगी। ऐसी पिओटल पोजीशन में जब वर्ग (Classes) बदल जाएँगे और नयी टैक्नालॉजी में जब वह क्लास ही नहीं रह जाएगा, जिसको कम्युनिस्ट टर्मिनोलॉजी 'क्लास' कहती है, तो किसके आधार पर क्रान्ति होगी? कम्युनिज्म में जिस वर्ग को क्रान्ति का अग्रदूत कहा गया है, जब वही समाप्त हो जाएगा तो क्रान्ति कौन करेगा? अतएव यह नयी टैक्नालॉजी कम्युनिज्म को विनाश की ओर ले जा रही है।

वैचारिक दृष्टि से अपूर्ण

विचारधारा की दृष्टि से देखा जाय तो जिस समय मार्क्स जीवित थे उस समय भी मार्क्स के विचारों को प्रतिगामी, प्रतिक्रियावादी (रिएक्शनरी) कहने वाले अनार्किज्म जैसे विचार चलते थे, जिसके प्रणेता थे प्रपोंचिन। वह कम्युनिज्म को एक पिछड़ा विचार मानते थे। जो मार्क्स के विरोधी हैं उनकी बात छोड़िए, मार्क्स के शिष्यों में भी यह जागृति थी कि विचारधारा की दृष्टि से यह अपूर्ण है। मार्क्स को एम० एन० राय से ज्यादा अच्छी तरह जानने वाला कोई कम्युनिस्ट अपने देश में तो कम से कम नहीं है। जिस एम० एन० राय ने लेनिन के साथ एक सहयोगी के नाते कार्य किया, उन्होंने भी कहा कि मार्क्स का विचार अधूरा है। इसकी कई बातों में अपूर्णता है। मार्क्स ने केवल 'डाइलेक्टिज्म ऑफ मैटर' बताया है। लेकिन वही

एक मात्र मूल कारण नहीं है। उसके साथ-साथ 'डायनिज्म ऑफ आइडियाज' भी जोड़ना चाहिए। ऐसी कई बातें एम० एन० राय ने मार्क्स से कई गुना आगे जाते हुए कहीं। अब तो मार्क्स के विचारों का तिरस्कार और मार्क्स को अपूर्ण बताने वाले अनेक श्रेष्ठ विचारक पश्चिम में ही आ रहे हैं। हरबर्ट मार्किन, आर० डी० लैंब, फ्रांच एनोन और कात्रे आदि ने स्पष्ट कहा कि मार्क्स का विचार पहले ठीक था लेकिन अब वह अपूर्ण दिखता है, इसके और आगे जाने की आवश्यकता है।

भारत में भी कम्यून की कल्पना

जहाँ तक हमारा सम्बन्ध है, कम्यून की कल्पना से हमको कोई परहेज होने की आवश्यकता नहीं। आप में से कुछ लोगों को पता होगा कि कम्यून की कल्पना जिस समय मार्क्स ने पहली बार ठीक ढंग से रखी और जब उधर का विचार यहाँ नहीं आया था, जब मार्क्स के 'दास कैपिटल' के पहले खण्ड (सन् १८६७) में यह विचार प्रकाशित हुआ; उसी समय उसके साथ-साथ हमारे देश में एक पुस्तिका प्रकाशित हुई, जिसमें कम्यून का वैसा ही वर्णन किया गया है जैसा मार्क्स के कम्यून का वर्णन है। दोनों में केवल एक फर्क है कि मार्क्स का कम्यून केवल भौतिक आधार पर है और भारत का कम्यून भगवान को मानने वाला है। किन्तु एक तरह की रचना, एक ही समय, एक भारत में और एक पश्चिम में प्रकाशित हुई। उस भारतीय लेखक का नाम था विष्णु बाबा ब्रह्मचारी। यह सन् १८६७ में प्रकाशित हुआ। एक ने दूसरे की नकल की है, यह कहने की भी कोई गुंजाइश नहीं है क्योंकि तब तक यह विचार भारत में आया ही नहीं था। हमें कम्यून की कल्पना से नहीं, भौतिकता से परहेज है और भौतिकता से हमारा यह परहेज ठीक है, पश्चिम का अनुभव भी इसकी पुष्टि करता है।

कम्युनिज्म का क्रियान्वयन

कोई भी कम्युनिस्ट शासित देश अपने देश में कम्युनिज्म के मौलिक सिद्धान्तों का क्रियान्वयन नहीं कर सका। एकछत्र कम्युनिस्ट जगत निर्माण करने की कल्पना खतरनाक साबित हुई। अपने राष्ट्रीय

स्वार्थ को लेकर आज हर एक कम्युनिस्ट राष्ट्र दूसरे कम्युनिस्ट राष्ट्र के साथ लड़भिड़ रहा है। हर कम्युनिस्ट राष्ट्र में जिन दलितों और मजदूरों का नाम सामने रखकर डिक्टेटरशिप चलायी जा रही है, उनको कुचलने का किस प्रकार का प्रयास होगा, पोलैण्ड में यह देखा जा सकता है। और भी कई उदाहरण हैं। यूरो-कम्युनिज्म उसका एक उदाहरण है।

कम्युनिस्ट जगत के बाहर कम्यून के प्रयोग

केवल इतनी ही बात नहीं है। कम्युनिस्ट जगत के बाहर भी पहले कुछ कम्युनिस्ट प्रयोग चले थे। आज भी चल रहे हैं। वह अपने प्रयोग में क्यों सफल होते हैं और क्यों असफल होते हैं, इसका हमने विचार किया तो दिखाई देगा कि विशुद्ध आर्थिक भौतिक आधार पर कोई भी बात सफल नहीं हो सकती। सन् १५६२ से लेकर आज तक कम्युनिस्टों के कुछ प्रयोग इंग्लैण्ड में चल रहे हैं। आज लगभग सौ कम्यून इंग्लैण्ड में हैं। अमेरिका में दो हजार कम्यून चल रहे हैं और इनमें इनकी औसत संख्या ५ से १५ तक है। इस विशुद्ध आर्थिक और भौतिक आधार पर चल रहे कम्यूनों का अनुभव बताता है कि पाँच-छह साल से ज्यादा ये कम्यून टिकते नहीं। परस्पर स्वार्थ के कारण उनमें खींचतान और झगड़े होते हैं और वे नष्ट हो जाते हैं। यह ग्रेट ब्रिटेन का चार सौ साल का और अमेरिका का अभी-अभी का अनुभव है। जहाँ विशुद्ध आर्थिक, भौतिक आधार है वहाँ चार लोग एक साथ नहीं चल सकते। कई उपसम्प्रदाय के लोगों ने भी कम्यून चलाए। जैसे हुक्के रायट सम्प्रदाय, चैनलाइज सम्प्रदाय, मार्मल सम्प्रदाय आदि। इनका जीवनकाल लम्बा है क्योंकि इनका आधार विशुद्ध भौतिक, आर्थिक नहीं है। सबसे प्रबल कम्यून इजरायल में है जो कम्युनिस्ट विरोधी देश है। वहाँ कम्यूनों को 'निमझीम' नाम से पहचाना जाता है और वे प्रबल राष्ट्रवाद के आधार पर लम्बे समय से ठीक ढंग से चल रहे हैं। स्पष्ट है कि केवल भौतिक, आर्थिक आधार पर कम्यून नहीं चल सकते। इसलिए किसी कम्युनिस्ट देश में कम्यून सफल नहीं हुए।

'इज्म' अब 'वैज्म' की ओर

रूस और चीन ने कहा था कि हम परिवार प्रणाली (Family organism) को नष्ट करेंगे। वहाँ फिर से परिवार प्रणाली आ गई है। कम्यून नष्ट हुए हैं। इस तरह से चेतनावादी आस्था, मार्क्स के शिष्यों के विचारों, कम्युनिस्ट देशों के अनुभवों आदि का यदि विचार किया तो कम्युनिज्म नाम की जो विचार प्रणाली है उसको नष्ट करने के लिए आपको और हमको उँगली उठाने की भी आवश्यकता नहीं। वह कार्य स्वयं हो रहा है। यह 'इज्म' 'वैज्म' (भूतकाल) की श्रेणी में पहुँचता जा रहा है। इसलिए हमने अपने भोपाल के कम्युनिस्ट मित्रों को कहा कि निकट भविष्य में आपका अतीत (वैज्म) होने जा रहा है, अतएव आपको खत्म करने के लिए हम लोग अपनी जिन्दगी लगा दें तो यह बहुत बड़ी कीमत हो जाएगी। हम यह कीमत नहीं देना चाहते।

राष्ट्र के उत्कर्ष की हमारी दृष्टि

केवल कम्युनिज्म का विरोध करना हमारा उद्देश्य नहीं है। हमारा उद्देश्य है इस राष्ट्र का निर्माण करना, इस राष्ट्र को परम वैभव तक ले जाना। जब हम कहते हैं कि हम राष्ट्रवादी हैं तो राष्ट्रवाद की कसौटी में राष्ट्र के उत्कर्ष की हमारी दृष्टि यह है कि दस-पाँच पूँजीपतियों का उत्कर्ष यानी राष्ट्र का उत्कर्ष नहीं है। पचास-पाँच सौ मिनिस्टरों का उत्कर्ष यानी राष्ट्र का उत्कर्ष, ऐसा हम नहीं मानते। इस देश का सबसे छोटा आदमी जो सबसे गरीब, गया-बीता आदमी है (Unto the last man) उसके उत्कर्ष को हम राष्ट्र का उत्कर्ष मानते हैं। राष्ट्र के उत्कर्ष की यही कसौटी है। इस सन्दर्भ से जोड़कर सम्पूर्ण राष्ट्र को परम वैभव तक किस तरह पहुँचाया जाय, इस इच्छा से हम लोग काम कर रहे हैं और चूँकि मजदूर क्षेत्र, यह राष्ट्रीय जीवन का एक स्ट्राटिजिक (रणनैतिक महत्त्व रखने वाला) क्षेत्र है, इसलिए इस क्षेत्र में हम लोग प्रवेश कर रहे हैं ऐसा हम लोग उनको बताते थे।

हम नहीं जानते कि कम्युनिस्ट हमारी इस बात को समझ सके कि नहीं। क्योंकि अन्य विचार समझने की उनकी क्षमता ठीक वैसे ही बहुत सीमित रहती है जैसे घोड़ों की इधर-उधर देखने की सीमित

क्षमता। घोड़ा केवल सामने देख सकता है। अतएव सम्पूर्ण राष्ट्र का विकास हो इसलिए मजदूरों का भी विकास हो, यह काम कौन करेगा ?

सचेत लोगों के संगठन

सन् १९४७ के पश्चात् एक विचार यह प्रचलित हुआ कि अब कोई काम करने की आवश्यकता नहीं। स्वराज्य प्राप्त हो गया है इसलिए अब जो कुछ भी करना है वह राज्य करेगा, सरकार करेगी। शासन के माध्यम से सबकुछ होगा। लोग भूल गए कि दुनिया का इतिहास यह नहीं बताता कि शासन के माध्यम से किसी राष्ट्र का कभी निर्माण हुआ है। ऐसा न पहले कभी हुआ, न अब हो सकता है। जब तक सर्वसाधारण नागरिक जाग्रत नहीं है, जाग्रत और सचेत नागरिकों के जन-संगठन जहाँ सक्रिय नहीं हैं और वे जन-संगठन जब तक सरकार पर उचित काम करने के लिए दबाव नहीं डालते, तब तक केवल शासकों के सहारे राष्ट्र का उत्थान नहीं हो सकता। कभी हुआ नहीं और न होने वाला है। स्पष्ट है कि यदि जनता सचेत नहीं है, सचेत लोगों के जन-संगठन नहीं हैं, तो सरकार अनियन्त्रित बन जाएगी। यदि हम यह कहते हैं कि राष्ट्र निर्माण की सम्पूर्ण जिम्मेदारी सरकार की है तो फिर सारे अधिकार भी सरकार को देने पड़ेंगे।

अधिकार की माँग करना और कर्तव्य की उपेक्षा करना परस्पर विरोधी बात है। आपको यदि मानवीय अधिकार (Human rights) है तो मानवीय कर्तव्य (Human responsibility) को भी स्वीकार करना पड़ेगा, नागरिक जिम्मेदारी (Civil responsibility) भी लेनी पड़ेगी। अतएव यदि हम यह कहेंगे कि सारी जिम्मेदारी सरकार की है तो उस कारण सरकार यदि तानाशाह बन जाती है तो उसको दोष देने का कोई नैतिक अधिकार हम लोगों को नहीं रहता। यदि जनता जाग्रत नहीं, जन-संगठन सक्रिय नहीं, तो उस अवस्था में सरकार के व्यक्ति के लिए, शासकों के लिए, तानाशाह बनना बिलकुल स्वाभाविक है। फिर यह अंग्रेजी सुभाषित सार्थक होने लगता है कि पावर करप्ट्स, एब्सोल्यूट पावर करप्ट्स एब्सोल्यूटली (सत्ता-शक्ति भ्रष्ट करती है, किन्तु पूर्ण सत्ता-शक्ति पूर्ण रूप से भ्रष्ट करती है)। इस दृष्टि से हमेशा यह उचित माना गया है कि राष्ट्र का निर्माण

करना हो तो राष्ट्रीय चेतना और सर्वसाधारण व्यक्ति का स्तर ऊँचा करना चाहिए। सचेत और राष्ट्रवादी व्यक्तियों के जन-संगठन खड़े होने चाहिए जिनका कार्य अपने-अपने संगठनों के सदस्यों के हितों की रक्षा; अपने-अपने संगठनों के सदस्यों की शक्ति का राष्ट्र निर्माण के कार्य में उपयोग करना; सरकार यदि अच्छा काम करती है तो सरकार को सहयोग, गलत काम करती है तो सरकार पर नियन्त्रण—इन तीनों बातों को लेकर सरकार के लिए वैकल्पिक शक्ति केन्द्र (Alternate power centre) के निर्माण के लिए जन-संगठन निर्माण करने की आवश्यकता है। यह विचार रखकर चलने वाले लोगों ने भारतीय मजदूर संघ का निर्माण किया है और इस दृष्टि से ये वैकल्पिक शक्ति केन्द्र न केवल मजदूर क्षेत्र में अपितु हर क्षेत्र में निर्माण होने चाहिए। जब इस तरह के जन-संगठनों का निर्माण होगा तभी देश का नक्शा ठीक हो सकता है।

सत्तातुराणां न दलः न राष्ट्रः

कुछ लोगों ने कहा, 'भाई, हम सरकार से बात नहीं करते'। ठीक है, केवल सरकार के माध्यम से राष्ट्र का निर्माण नहीं होगा, लेकिन राजनीति सर्वोपरि है और इस दृष्टि से राजनीतिक लोगों के माध्यम से राष्ट्र का निर्माण होगा। किन्तु हमारे देश की स्थिति भिन्न है। यहाँ राजनीति को हमेशा सीमित स्थान और सीमित महत्त्व दिया गया है। यहाँ यह कहा गया है कि राजदण्ड के ऊपर यदि धर्मदण्ड रहा तभी राजदण्ड ठीक ढंग से काम कर सकता है।

ऐसा कहा जाता है कि आज हमारे देश में राजनीतिक जागृति बहुत आ गई है। शायद इससे पहले हमारे देश में इतनी जागृति नहीं थी और इस जागृति के कारण सबके मन में भय निर्माण हो रहा है। मेरा ऐसा ख्याल है कि हिन्दुस्थान के ७० करोड़ लोगों में से पूरे ७० करोड़ लोग अब इतने जाग्रत हो गए हैं कि वे सभी प्रधानमन्त्री बनना चाहते हैं। ७० करोड़ लोगों में से किसी को दुःख नहीं होगा यदि उसको प्रधान मन्त्री बना दिया जाय। इतनी प्रचण्ड राजनीतिक जागृति हमारे देश में आ गई है। लेकिन यह जागृति इस तरह की है कि जिसके कारण भारतीय जीवन-मूल्य टूट रहे हैं, राष्ट्रीय जागृति समाप्त होती जा रही है। मैं कॉलेज में था तो हमें एक कविता पढ़ाई

जाती थी, जिसमें कहा गया था कि, **'अर्थातुराणां न पिता न बन्धुः'** (जो केवल अर्थ-प्राप्ति के लिए आतुर है, वह नहीं देखता है कि बाप कौन है और भाई कौन है) और **'कामातुराणां न भयं न लज्जा'** (कामातुर को भय और लज्जा नहीं होती)। आज के सन्दर्भ में यह कहना पड़ता है कि **'सत्तातुराणां न दलः न राष्ट्रः'** अर्थात् सत्तातुर लोगों के लिए न दल है, न राष्ट्र। समाचार-पत्र इस बात की पुष्टि करते हैं। क्या इस प्रकार के लोगों के द्वारा राष्ट्र निर्माण जैसा पवित्र कार्य होगा ?

यह ठीक है कि यदि सामान्य जनता सचेत है, राष्ट्रीय जागृति का स्तर ऊँचा है, सचेत राष्ट्रवादी व्यक्तियों के जन-संगठन सक्रिय हैं और वैकल्पिक सत्ता केन्द्र के नाते काम कर रहे हैं तो राजनीतिक नेताओं के द्वारा भी सत्कार्य करवा लेना सम्भव हो सकता है। लेकिन यदि बाकी कोई सहायक तत्त्व (अटेण्डेण्ट फैक्टर्स) नहीं है, सारे सहायक तत्त्व अनुपस्थित हैं तो यह समझना कि केवल राजनीतिक क्षेत्र के द्वारा सबकुछ होगा, कितना खतरनाक हो सकता है, इसका अनुभव हम लोग आज कर रहे हैं।

प्रतियोगी सहकारिता

इस दृष्टि से हम लोगों ने ऐसा सोचा कि जो लोग आलस्य के कारण केवल सरकार को ही एकमात्र माध्यम मानते हैं, अथवा शॉर्टकट के नाते जो लोग राजनीति को ही नजदीक का रास्ता मानते हैं, इन दोनों विचारों के लोगों के प्रभाव में न आते हुए शास्त्र शुद्ध ढंग से काम किया जाय। शास्त्र शुद्ध ढंग से काम करने का मतलब यह है कि हर एक व्यक्ति की राष्ट्रीय चेतना को सचेत और जाग्रत करना। हमारा मजदूर क्षेत्र है तो हर एक मजदूर की राष्ट्रीय चेतना जाग्रत करना, उसको राष्ट्रीय जिम्मेदारी का साक्षात्कार करवाना हमारा दायित्व है। साथ ही साथ उसके हितों की रक्षा करना, उसकी शक्ति का उपयोग राष्ट्र निर्माण कार्य में कैसे हो, यह देखना और प्रतियोगी सहकारिता (Responsive cooperation) का सिद्धान्त लेकर सरकार के साथ व्यवहार करना हमारा मुख्य आधार है। प्रतियोगी सहकारिता का मतलब यह होता है कि राष्ट्र और मजदूर के साथ आप यदि सहयोग करेंगे तो मजदूर भी आपके साथ सहयोग करेगा।

राष्ट्र और मजदूर के साथ यदि आप असहयोग करेंगे तो मजदूर भी सरकार से असहयोग करेगा। राष्ट्र और मजदूर का आप विरोध करेंगे तो मजदूर भी आपका विरोध करेगा। इस तरह की प्रतियोगी सहकारिता का सिद्धान्त लेकर जन-संगठन खड़ा किया जाय और इस तरह विभिन्न क्षेत्रों में जन-संगठन खड़े हों, यह राष्ट्र के लिए आवश्यक है।

अभावों के बावजूद प्रगति

इस तरह राष्ट्र मन्दिर का निर्माण करने की पृष्ठभूमि तैयार हो। इस आधार और विचार का निर्माण करने के लिए भारतीय मजदूर संघ का निर्माण हुआ है। सभी संकटों के बावजूद भारतीय मजदूर संघ की प्रगति हुई है। मैं यह सब बतलाने की आवश्यकता यहाँ नहीं समझता कि इस तरह के कितने संकट थे। तरह-तरह के संकट थे—मालिकों का विरोध, सरकार का विरोध, सामान्य लोगों की उदासीनता। हमारे पास सभी तरह का अभाव—न पैसा, न कार्यकर्ता, न कोई सहायता करने वाला है। ऐसी परिस्थिति में शून्य में से सृष्टि का निर्माण होने सरीखी प्रगति हुई। लेकिन हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि हमारी यह प्रगति विचारधारा की विशुद्धता के कारण है, हम लोगों के कर्तृत्व के कारण नहीं। क्योंकि कर्तृत्व और बुद्धिमानी का यदि विचार किया तो अन्य श्रमिक संघों, संस्थाओं में आपको ऐसे अनेक लोग मिलेंगे जो हमसे ज्यादा बुद्धिमान हैं, हमसे ज्यादा चतुर हैं, हमसे ज्यादा चालाक हैं, हमसे ज्यादा तिकड़मबाज हैं, हमसे ज्यादा कर्मठ हैं। हाँ, यह ठीक है कि हम लोग भोले नहीं हैं, लेकिन यह भी सच है कि हम तिकड़मबाज भी नहीं हैं। हम यह तय करके चले हैं कि हम तिकड़मबाजी नहीं करेंगे, चालाकी नहीं करेंगे, शॉर्टकट नहीं लेंगे। लेकिन इतना भोलापन भी नहीं अपनायेंगे कि दूसरे की तिकड़मबाजी चलने दें। दूसरे की तिकड़मबाजी नहीं चलने देंगे, लेकिन खुद भी चालाकी और तिकड़मबाजी नहीं करेंगे। तो हमसे ज्यादा बुद्धिमान, ज्यादा कर्तृत्ववान, ज्यादा चालाक और ज्यादा तिकड़मबाज लोग अन्य प्रतिस्थापित यूनियनों में रहते हुए यदि भारतीय मजदूर संघ की प्रगति हुई है तो हमारे कर्तृत्व के कारण नहीं, हमारे विचार के कारण हुई है।

हमारे विचार इस भूमि और संस्कृति की उपज हैं। विचार को लेकर हम आगे बढ़ रहे हैं। इसके कारण सभी तरह के अभावों (कार्यकर्ताओं, धन, अनुभव, बुद्धिमानी) के बावजूद भारतीय मजदूर संघ दिन दूना रात चौगुना प्रगति करता गया और आज एक विशेष मोड़ पर आकर हम लोग खड़े हैं; जबकि सरकार ने भी इसको प्रामाणिक संगठन घोषित किया है। इस नयी परिस्थिति में कौन-सी नयी जिम्मेदारियाँ आती हैं, कौन-सी नयी कठिनाइयाँ आ सकती हैं, कौन-सी नयी सतर्कताएँ बरतनी हैं, इन सब बातों पर विचार करना होगा।

□

२

मजदूर आन्दोलन को एक नया आयाम

भारतीय मजदूर संघ की कुछ व्यावहारिक विशेषताएँ हैं। इसमें एक व्यावहारिक विशेषता यह है कि भारतीय मजदूर संघ कोई भी अच्छा काम जल्दी नहीं करता। यह बात पुराने लोगों के ख्याल में है। मैं यह बताना चाहता हूँ कि यह भी एक विशेषता है कि कोई भी अच्छा काम जल्दी नहीं करना और जो काम छोटा-सा दिखता है उसमें भी इतनी देर करना कि नये कार्यकर्ता का दम उखड़ जाये। वह नाराज हो जाये। इस सम्बन्ध में ज्यादा नहीं, केवल एक छोटा-सा उदाहरण दूँगा।

मजदूर संघ के प्रारम्भ से ही अलग-अलग जगह से लोग इसमें आये हैं। हम जानते हैं कि किसी कार्यक्रम में यदि **'वन्देमातरम्'** हो रहा हो तो कैसे खड़े रहना है। राष्ट्रगीत हो रहा हो तो दक्ष की स्थिति में खड़ा रहना चाहिए, यह विचार मन में था। उस समय

मजदूर संघ का कार्य ज्यादा नहीं था। यदि हम यह कहते कि सब लोग दक्ष में खड़े रहें तो कोई विरोध करता, ऐसा नहीं था। लेकिन यह जहाँ भावना का भी प्रश्न था, वहीं आदत का भी सवाल था। हम लोग विचार करते रहे कि राष्ट्रगान के समय सबको दक्ष में खड़े रहने के लिए कहें कि नहीं। अन्ततः दक्ष में खड़े रहना चाहिए, यह कहने में हमें ग्यारह साल लगे। यदि यह छोटी-सी बात कि राष्ट्रगीत के समय खड़े रहना कहने में ग्यारह वर्ष लगे, तो इससे बड़ी बात करने में कितने साल लगेंगे। काम होता नहीं, ऐसा नहीं। काम धीरे-धीरे होता है, एकदम नहीं होता।

'श्रमिकीकरण' शब्द का प्रयोग

भारतीय मजदूर संघ के कार्यकर्ताओं को एक शब्द 'श्रमिकीकरण' बहुत याद है। श्रमिकीकरण की कल्पना एकदम नयी है क्योंकि किसी पश्चिमी देश में यह शब्द नहीं है। कम्युनिस्टों को शब्दावली उधार लेने की सुविधा है। उनकी शब्दावली में यह शब्द नहीं है। किन्तु यह नया शब्द प्रचलित करने की कल्पना करने के पश्चात् शब्द का प्रयोग करने के पहले यह पूछा गया कि यह शब्द कैसा लगता है। बाद में पूछा गया कि बाहर इसका क्या प्रभाव होगा। कुछ दिन बाद बम्बई में एक कार्यक्रम हुआ। उसमें एन० जी० गोरे और मधु दण्डवते के साथ मेरा भाषण था। मैंने अपने लोगों से कहा कि आप सामने बैठ रहे हैं। आज 'श्रमिकीकरण' शब्द का मैं उच्चारण करने वाला हूँ। आप लोग देखें कि गोरे और मधु दण्डवते के चेहरे पर यह शब्द सुनकर कैसा प्रभाव उभरता है। उनकी क्या प्रतिक्रिया होती है, बाद में मुझे बताएँ। तब तक उस शब्द का प्रयोग करने के प्रश्न पर विचार करते-करते सात साल हो चुके थे। उस कार्यक्रम के बाद लोगों ने मुझे बताया कि यह शब्द सुनते ही गोरे और दण्डवते एकदम सचेष्ट हो गए। तब तय हुआ कि उस शब्द का प्रयोग करना है। किसी शब्द को स्वीकार करने के सात साल बाद उसका प्रयोग करने की तैयारी होनी चाहिए। अच्छे कार्य के लिए लम्बा इन्तजार और ध्येय की तैयारी मन में होनी चाहिए।

इसी तरह हम लोग एक दूसरा भी काम कर रहे हैं। मैं यह कहूँगा कि उस कार्य की भूमिका बाँधने का काम चल रहा है। लेकिन अब

तक हम नहीं कह रहे थे कि उस काम की भूमिका बाँधना चल रहा है। अलग-अलग विषय कार्यकर्ताओं के सामने आ रहे हैं। कार्यकर्ता उस विषय को समझ भी रहे हैं। ऐसे भी विषय आ रहे हैं जो हमारे पूर्व लोगों ने आग्रहपूर्वक मजदूर क्षेत्र में रखे नहीं।

बोनस की नयी कल्पना

सबको पता है कि हम लोगों ने बोनस की जो कल्पना पहली बार बताई, वह नयी थी। जब हमने कहा कि बोनस एक विलम्बित वेतन (Deferred wage) है तो दूसरे नेता, बैंक, पी० एण्ड टी० आदि के लोग कहने लगे कि यह कैसे हो सकता है कि हम भी बोनस के हकदार हो सकते हैं। यानी जिनको बोनस मिलना चाहिए वही सशंकित थे। कम्युनिस्ट नेता कहने लगे कि ये कल के बच्चे कहते हैं कि सरकारी कर्मचारियों को भी बोनस मिलना चाहिए, यह कैसे हो सकता है। किन्तु सरकारी कर्मचारियों को आज बोनस मिल रहा है, यह बात प्रत्यक्ष हो गई है।

मूल्य-वृद्धि के लिए वेतन-वृद्धि जिम्मेदार नहीं

हम जानते हैं कि मजदूरों के खिलाफ सरकार और मैनेजमेंट तरह-तरह का प्रचार करते हैं। उनके खिलाफ जनता को भड़काते हैं। अब तक मजदूरों ने इसका तर्कशुद्ध विरोध नहीं किया। उदाहरण के लिए, जैसे सरकार यह लगातार प्रचार कर रही है कि कर्मचारी ज्यादा पैसा माँगता है, जिसके कारण उपभोक्ता को ज्यादा पैसे देने होते हैं। मजदूरों द्वारा ज्यादा पैसा माँगने के कारण ही उपभोक्ता वस्तुओं की कीमतें बढ़ रही हैं। किसी दूसरी यूनियन ने इसका शास्त्र शुद्ध खण्डन नहीं किया। भारतीय मजदूर संघ ने यह कहा कि क्या मजदूरी ज्यादा देने से ही महँगाई बढ़ती है, और जब ज्यादा पैसा नहीं देते तो महँगाई नहीं बढ़ती, रुक जाती है। आप हमें ज्यादा पैसा दें या न दें, महँगाई तो निरन्तर बढ़ती ही जा रही है। इससे स्पष्ट होता है कि महँगाई बढ़ने के और भी कारण हैं। इस सन्दर्भ में हमने सिद्धान्त रूप में एक बात कही जो किसी ने नहीं कही।

"प्रत्येक वेतन-वृद्धि मूल्य-वृद्धि के लिए जिम्मेदार नहीं है। वेतन-वृद्धि मूल्य-वृद्धि के लिए उतनी सीमा तक ही जिम्मेदार है, जितनी

सीमा तक वह वेतन-वृद्धि उत्पादन-वृद्धि से अधिक हो। और अधिकांश उद्योगों में वेतन-वृद्धि उत्पादन-वृद्धि से अधिक नहीं है।"

(Every wage rise is not responsible for price rise. Wage rise is responsible for price rise only to the extent to which that wage rise is in excess of productivity rise. And in most of the industries there is no wage rise excess of productivity rise.)

अत: हमारी वेतन-वृद्धि से मूल्य-वृद्धि हो रही है, यह बात गलत है। यह सिद्धान्त हमने कहा, किसी और ने नहीं कहा, किसी पुरानी यूनियन ने नहीं कहा। कम्युनिस्ट पूछते हैं, यह सिद्धान्त आप कहाँ से लाये हैं? हमारे सबसे सम्बन्ध हैं, वे हमसे पूछते हैं। हमें अपनी बात बतानी चाहिए। उनका कहना है कि मालिक और सत्ता की बात सही है कि हमारी वेतन-वृद्धि के कारण ज्यादा नोट बाजार में आ जाते हैं। ज्यादा नोटों के कारण नोट की कीमत कम हो जाती है। महँगाई बढ़ती है। कम्युनिस्ट कहते हैं कि हमें यही नीति अपनानी चाहिए कि तुम्हारा चाहे कुछ भी हो, हमारा वेतन बढ़ना चाहिए। इसमें कोई तर्क देने की आवश्यकता नहीं। आपके सिद्धान्त अपनाने से तर्क देना पड़ेगा, बहस करनी पड़ेगी, समझाना पड़ेगा। यह परेशानी की बात है। हमने कहा, ऐसा नहीं है। राष्ट्रवादी होने के नाते हम हर काम जिम्मेदारी के साथ ही करते हैं। जहाँ माँग रखते हैं, वहाँ उसके पीछे का तर्क भी बताते हैं, और माँग पूरी करने का रास्ता भी।

वास्तव में आश्चर्य की बात है कि तीन साल पहले एक स्वतन्त्र संस्था इण्डियन इन्स्टीट्यूट ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन ने इसी विषय पर एक सर्वेक्षण किया था। उसने स्वतन्त्र निष्कर्ष निकाला कि महँगाई में मजदूरों की जिम्मेदारी का हिस्सा बहुत कम है। महँगाई के लिए तीन प्रमुख बातों को जिम्मेदार बताया—

१. घाटे की अर्थ-व्यवस्था (Deficit financing),

२. काला धन तथा

३. अनियन्त्रित लाभ, लाभांश तथा ब्याज। शेष कारण नगण्य हैं।

इसके बाद राष्ट्रीय अभियान समिति (एन० सी० सी०) के मंच पर जब हम मिले तो कम्युनिस्टों ने कहा कि आपके सिद्धान्त की पुष्टि हो गई है। मैंने कहा, ठीक है। आपका रास्ता अलग है, हमारा रास्ता बहुत लम्बा है। आप अपने ढंग से चलिए, हम अपने ढंग से चलेंगे।

उत्पादन-हानि के विभिन्न कारण

अब आमतौर पर एक गलतफहमी फैलाई जा रही है कि मजदूरों की हड़ताल के कारण उत्पादन के लिए खतरा पैदा हो रहा है। यह प्रचार इतना धुआँधार है कि कम्युनिस्ट भी उसे सच मानने लगे हैं। यह दूसरी बात है कि वे यह तर्क देते हैं कि उत्पादन की हानि होती है तो माँगें क्यों नहीं मानते। हमने कहा कि हड़ताल के कारण उत्पादन अत्यन्त नगण्य मात्रा में घटता है। उत्पादन में रुकावट और गिरावट अन्य कारणों से भी है। दूसरी बात, यदि हड़ताल के कारण उत्पादन घटता है तो कई बार ऐसा क्यों होता है कि जिस वर्ष हड़ताल हुई, उस वर्ष उत्पादन बढ़ गया और हड़ताल नहीं हुई तब उत्पादन घट गया। बाद में एक सर्वेक्षण हुआ। उस सर्वेक्षण ने यह स्पष्ट बताया कि उत्पादन-हानि के लिए लम्बी हड़ताल सहित मजदूर हड़ताल की जिम्मेदारी का प्रतिशत बहुत कम है। ज्यादातर हानि अव्यवस्था, बिजली की कमी और रुकावट, गलत नियोजन, मैनेजमेंट की नीति, कच्चा माल आने में देरी, मशीनरी की खराबी आदि के कारण होती है। यह गलत है कि मजदूर के कारण उत्पादन में कमी आती है। हमने यह बात तब कही जब कोई नहीं कहता था। बाद में यह बात सर्वेक्षण से प्रकट हुई। इसके बाद बाकी लोगों को भी यह स्वीकार करना पड़ा।

सरकारी नीति एक दूसरे को लड़ाने की

आज हम स्वतन्त्र हैं। अंग्रेज गये, हमारी सरकार आयी। हम जानते हैं कि सरकार की नीति क्या है? प्रारम्भ से हम कह रहे हैं कि गोरे अंग्रेज गये, काले आ गये। मशीनरी वही है, पालिसी वही है, इम्पलीमेंट करने वाले भी वही हैं। यहाँ तक कि जब हमारा संविधान बन रहा था तो नेहरू जी ने कहा था कि ढाँचा बदलने में हम अपनी ताकत नहीं गँवायेंगे। जो ढाँचा हमने स्वीकार किया वह अंग्रेजों का था। उसमें मूल अन्तर करने की तैयारी संविधान बनाने वालों की नहीं थी। उसके कारण औद्योगिक सम्बन्धों के रूप भी वही हैं। 'फूट डालो और राज्य करो' की अंग्रेजी नीति भारत सरकार ने ले ली है और इसलिए समय-समय पर हमें लड़ाया जाता है। ग्रामीण क्षेत्र में किसान एवं मजदूर को लड़ाया जाता है। किसान को कहा

जाता है कि खेतिहर मजदूर तुम्हारा दुश्मन है। कल तक ठीक से काम चलता था, आज वह पैसे ज्यादा माँगता है। मजदूर, उपभोक्ता, कर्मचारी को कहा जाता है कि किसान तुम्हारा दुश्मन है। वह अपने अनाज की अधिक कीमत माँग रहा है। किसान ने अनाज के उचित मूल्य की परिभाषा की है कि लागत निकाल कर, कुछ लाभांश जोड़-कर जो मूल्य बनता है, वह उसे मिलना चाहिए। सरकार कहती है कि यह गैर-जिम्मेदाराना माँग है। किसान का उत्पादन का पूरा खर्च निकाल कर यदि हम उसमें लाभांश जोड़कर उसको मूल्य देंगे तो शहर के मजदूरों को महँगा पड़ेगा। शहर का मजदूर सोचता है बात तो सही है। इस प्रकार शहर के मजदूर के विरुद्ध गाँव का किसान, गाँव के किसान के विरुद्ध खेतिहर मजदूर। सरकार की यह नीति है कि हर एक को हर दूसरे से लड़ाया जाय।

भारतीय किसान संघ के सामने जब यह सवाल आया तो हमने इसका अध्ययन किया। ऐसा दिखाई दिया कि वास्तव में यह परिस्थितियों के कारण निर्माण होने वाला प्रश्न नहीं है। यह प्रश्न सरकार की गलत नीतियों के कारण उत्पन्न हुआ है। सरकार ने जो प्राथमिकताएँ निर्धारित की हैं, वे हमारे अनुकूल नहीं हैं। हमने रूस की नकल की है। रूस के लिए भी रूस की जो नीति ठीक नहीं चल रही है, हमने उसका अन्धानुकरण किया है। रूस ने बड़े उद्योगों को प्राथमिकता दी है। खेती उनकी प्राथमिकताओं में नहीं है। इसका इतना बुरा परिणाम हो रहा है कि हर साल रूस की खेती असफल होती है। यहाँ तक कि कम्युनिस्ट रूस को पूँजीवादी अमेरिका से हर साल अनाज लेने जाना पड़ता है। रूस में यह कहावत बन गई है कि किसी को यदि सार्वजनिक जीवन से उठाना है तो उसे कृषि मजदूर क्षेत्र में लगा दिया जाये।

उनकी यह नीति ठीक नहीं है। हमारा भी कृषि प्रधान देश है। गरीब और सीमान्त किसानों के लिए जो पैसा भेजा जाता है, बड़े किसान खा जाते हैं। सरकारी मशीनरी के कारण उनके पास तक पैसा पहुँच ही नहीं पाता। हमने कहा कि हिन्दुस्तान की आवश्यक-ताओं और परिस्थितियों के अनुकूल योजना बनाई जाय।

प्राथमिकता बदलने की आवश्यकता

बड़े उद्योगों को प्रथम वरीयता और कृषि का दुर्लक्ष्य करना ठीक नहीं है। यह नीति छोड़ी जाये। छत्तीस साल तक जो नाजायज खर्च किया है उससे आधा खर्च केवल छह साल तक प्रयोग के तौर पर कीजिए, हिन्दुस्थान का नक्शा बदल जायेगा। यह हमारी चुनौती है। विकास का ढाँचा सरकार को तैयार करके देना चाहिए। चाहे वह स्कूल बिल्डिंग हो या एप्रोच रोड, उसके लिए सरकारी खजाने से सारा खर्च देना, यह कल्याणकारी राज्य का कर्तव्य है। यह सब करके वह उपकार नहीं कर रही है। प्राथमिकता बदलने की जरूरत है। जो प्राथमिकता बड़े उद्योगों को दी थी वह गाँवों को दी जाये और उसका पचास प्रतिशत छह वर्ष तक कृषि पर खर्च कीजिए; और यह भी देखिये, जिसके लिए खर्च किया जा रहा है वह वहाँ तक पहुँचता है या नहीं। गाँव के बड़े लोग और अफसर तो उसे हड़प नहीं जाते। इस सबसे बड़ी बात यह है कि पहले नीति बदली जाय। कृषि साधन खाद, पानी, बीज, बिजली आदि दिए जायें। हमने कहा कि उद्योगों को जो सहायता (सबसिडी) देते हैं वह कृषक को दें। यदि उन्हें अच्छी सहायता (हैवी सबसिडी) मिलेगी तो लागत घटेगी। उपभोक्ता पर दबाव न पड़ते हुए किसान को उचित मूल्य मिलेगा। थोड़ा लाभांश जोड़कर उपभोक्ता पर दबाव न बढ़ाते हुए अन्ततः किसान की जेब में पैसा जायेगा तो वे जीवन के लिए आवश्यक वस्तुएँ खरीदेंगे। इसके कारण छोटे-छोटे उद्योग शुरू होंगे। अर्द्ध-बेरोजगारी दूर होगी। रोजगार बढ़ेगा। क्रय-शक्ति बढ़ेगी। ग्रामीण उद्योगीकरण और श्रमिकीकरण से विकास होगा। तरह-तरह के उद्योग शुरू होंगे। उद्योग शुरू होंगे तो सबको काम मिलेगा। आम आदमी की क्रयशक्ति बढ़ेगी। जमीन पर दबाव कम होगा। ग्रामीण उद्योगीकरण के साथ-साथ एक ऐसा नया चक्र शुरू होगा जो हमें आर्थिक वैभव की ओर ले जा सकता है। हमने चुनौती दी है कि छह साल यह प्रयोग कीजिए। फिर परिणाम देखिये।

सरकार कहती है कि यदि वह किसानों को उचित मूल्य देती है तो मजदूरों पर उपभोक्ता के नाते दबाव पड़ेगा। हमने कहा कि यह गलत बात है। यदि किसान को उचित मूल्य मिलता है तो किसान मजदूर को भार नहीं समझता। यह बात ठीक है कि किसान मजदूरों

को पर्याप्त पैसा नहीं देता। परन्तु यह उसकी असमर्थता है। यदि उसके पास पैसा आयेगा तो वह अपनी इच्छा से खेतिहर मजदूर को पर्याप्त पैसा देगा। यह बात किसी ने नहीं कही। हम लोगों ने कहा कि पहली नीति को आप बदलिए। हमारी नीति क्या है ? ब्रिटिश सरकार की जो नीति थी वही नीति आज भी चल रही है।

अंग्रेजी राज्य की विरासत : तीन शोषण

अंग्रेज सरकार राज्य इसलिए चलाती थी कि इंग्लैण्ड के पूँजी-पतियों को सुविधा हो। अंग्रेज सरकार कच्चा माल सस्ते दर में इंग्लैण्ड ले जाती थी। वहाँ से उसको पक्का माल बनाकर भारत को महँगे दर पर बेचती थी। भारत का माल सस्ते में लेना और इंग्लैण्ड का सस्ता माल महँगा बेचना। कच्चे माल के साधन के लिए हिन्दुस्थान का उपयोग करने की उसकी नीति थी। केवल अपना साम्राज्य दिखाने के लिए राज्य नहीं करते थे। कच्चे माल के साधन और निर्मित माल के बाजार के रूप में अंग्रेजों द्वारा हिन्दुस्थान का उपयोग प्रमुख बात थी। यह नीति आज भी चल रही है। अंग्रेजी साम्राज्य चला गया, लेकिन नीति वही चल रही है कि जिसमें से पूँजीपतियों और कारखानेदारों का लाभ हो। कारखानों को लाभ पहुँचाने के तीन तरीके हैं—

१. कच्चा माल सस्ता प्राप्त करना।

२. अधिक उत्पादन करना।

३. उत्पाद सस्ता हो इसके लिए सस्ता मजदूर ज्यादा काम और माल बन जाने पर उसका ज्यादा से ज्यादा मूल्य प्राप्त करना।

अंग्रेज भी यही करते थे। कच्चा माल सस्ते में प्राप्त करना यानी किसान का शोषण। उत्पादन सस्ता करना यानी मजदूर का शोषण, सस्ते माल की कीमत ज्यादा लेना यानी उपभोक्ता का शोषण। इन तीन शोषणों के आधार पर पूँजीवाद खड़ा है। यह कार्य पहले ब्रिटिश सरकार करती थी, आज हमारी सरकार कर रही है। सरकारी आशीर्वाद से उसकी छत्रछाया में ये तीनों शोषण आज भी चल रहे हैं। लेकिन हमें यह जानकारी नहीं है कि हमारा शोषण हो रहा है। हमारा शोषण करने वाला कौन है ? जिस दिन यह जानकारी किसान, मजदूर, उपभोक्ता—तीनों को हो जाएगी, जिस दिन उन्हें पता चल जायेगा कि सरकार उनके खिलाफ षड्यन्त्र कर रही है, उसी दिन

सारा मामला ही उलट जायेगा। इसलिए बड़े सूक्ष्म तरीके से यह प्रचार चलता है, किसान को मजदूर के खिलाफ, भजदूर को किसान के खिलाफ, उपभोक्ता को किसान-मजदूर दोनों के खिलाफ भड़काया जाता है। तीनों एक दूसरे को गाली देते हैं। तीनों गुमराह हो रहे हैं। सरकार मलाई खा रही है। उन्हें प्रशिक्षित करने के लिए किसी को फुरसत नहीं है। अंग्रेजों के समय का दृश्य आज भी चल रहा है यह जानकारी देने का कार्य भारतीय मजदूर संघ के पूर्व किसी ने नहीं किया। इस गहरे षड्यन्त्र का भण्डाफोड़ सर्वप्रथम भारतीय मजदूर संघ ने ही किया। यहाँ मैं इस विषय की गहराई में नहीं जाऊँगा।

साम्राज्यवादी देशों द्वारा शोषण की नवीन पद्धति

दूसरे महायुद्ध के बाद उत्पन्न अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों के कारण अंग्रेज भारत छोड़कर चले गए। वे स्वतन्त्रता देने को बाध्य हो गए। आज स्थिति यह है कि श्वेत साम्राज्यवादी देश एक तरफ और नव-स्वतन्त्र राष्ट्र एक तरफ हैं।

दुनिया का नक्शा कैसा भी बनाया जा सकता है। लेकिन आज जैसा नक्शा बना है उसमें सभी सफेद और धूर्त साम्राज्यवादी राष्ट्र उत्तर में हैं। उन्हें उत्तरी राष्ट्र कहते हैं। दक्षिण की तरफ नव-स्वतन्त्र और अर्ध-स्वतन्त्र देश हैं। एक तरफ उत्तरी देश तो दूसरी तरफ दक्षिणी देश हैं। विश्व उत्तर-दक्षिण में विभाजित है। सफेद साम्राज्य-वादी देश अपने उपनिवेशों का शोषण करके वैभव प्राप्त करते थे। जैसे-जैसे उपनिवेश (कालोनी राष्ट्र) उनके हाथ से निकलते गए, उनका आर्थिक ढाँचा चरमराता गया। उन्हें चिन्ता हुई कि कालोनी राष्ट्रों का फिर से शोषण कैसे किया जाये। यदि नव-स्वतन्त्र राष्ट्रों का वे शोषण नहीं कर सकते तो उनका ढाँचा चल नहीं सकता। अब उनके सामने यह प्रश्न एक गम्भीर समस्या बनकर खड़ा है कि नव-स्वतन्त्र राष्ट्रों का शोषण कैसे किया जाय। यदि नव-स्वतन्त्र राष्ट्रों की आर्थिक नीतियाँ उनके अनुसार नहीं रहीं तो शोषण नहीं हो सकता। क्योंकि इन नव-स्वतन्त्र राष्ट्रों को राजनीतिक स्वातन्त्र्य प्राप्त है इसलिए उनके सामने एकमेव उपाय था इन नव-स्वतन्त्र राष्ट्रों में अपनी पसन्द की पिछलग्गू सरकारें बनाना। वे ऐसी सरकार चाहते हैं कि नव-स्वतन्त्र देश की आम जनता का शोषण करने के लिए जो-जो

सुविधाएँ होनी चाहिए, वह देने के लिए वचनबद्ध हो।

दुर्भाग्य से हमारे यहाँ ब्रिटिश पद्धति मौजूद थी। गांधीजी और लोकनायक जयप्रकाश आदि सभी ने कहा कि यह हमारे यहाँ की संस्कृति और परिस्थिति के अनुकूल नहीं है। हमें अपने अनुकूल अलग ढंग का ढाँचा बनाना चाहिए। फिर भी हमारे नेताओं ने इसी को लाभदायक समझा और यह उपनिवेशवादियों के अनुकूल ही है।

बिकाऊ राजनीतिज्ञ और पिछलग्गू सरकार

गांधीजी ने १६०८ में 'हिन्द स्वराज्य' नाम की पुस्तक लिखी थी। उसमें उन्होंने लिखा कि ब्रिटिश पार्लियामेण्टरी डेमोक्रेसी भारत में मत लाइए। यह हमारे अनुकूल नहीं है। जहाँ ६० प्रतिशत लोग गरीबी की रेखा के नीचे हों, आधे से अधिक लोग निरक्षर हों, वहाँ यह पद्धति उपयोगी नहीं होगी। जहाँ गरीबी और निरक्षरता इतनी अधिक है, उस देश के मतदाता निष्पक्ष और निर्भय होकर मतदान कैसे कर सकते हैं। चुनाव के समय यह चर्चा प्रमुख रूप से होती है कि कौन कितने वोट खरीद सकता है। ढंग अलग-अलग हो सकते हैं। खरीद वही सकता है, जिसके पास पैसा है। दरिद्रों से वोट पूंजीपति के धन से ही प्राप्त किया जा सकता है। यह वोट प्राप्त करना आज की राजनीति की एक प्रमुख कला है। किसी ने ठीक ही कहा है—

"Politics is a gentle art of getting vote from the poor and campaign funds from the rich by promising to protect each from the other." (राजनीति एक को दूसरे से बचाने का वादा करके गरीबों से वोट और अमीरों से चुनाव फण्ड प्राप्त करने की उत्तम कला है।)

मजदूरों को बताया गया कि मालिकों से संरक्षण होगा, मालिकों को बताया कि मजदूरों से संरक्षण होगा। एक से पैसा लेना, दूसरे से वोट लेना, इसी कुशल कला को आज राजनीति कहते हैं।

क्या आज कोई ऐसा पैसे वाला 'कर्ण' कहीं है जो यह कहे कि आइए, नेताजी, मेरा मोक्ष कीजिए, मेरा खजाना लूटकर ले जाइए, मैं यह धन पसन्द नहीं करता। ऐसा कहने वाला आज कोई दिखाई नहीं देता। आज जो लोग नीतियाँ बनाते हैं, उनसे अधिकतम धन कमाने की छूट प्राप्त करना पैसे देने की पहली शर्त होती है। बिना

पैसे के चुनाव नहीं जीतते, चुनाव नहीं जीतते तो सरकार नहीं बनती और सरकार नहीं बनती तो नेताजी का जीना मुश्किल है। जैसे मछली पानी के बाहर नहीं रह पाती उसी प्रकार नेताजी भी कुर्सी से बाहर नहीं रह सकते। इसलिए जो पैसा देता है उसकी शर्तें भी माननी पड़ती हैं। जिससे पैसा लेते हैं उसके सामने आँखें झुक जाती हैं। उनके पैसे से हुकूमत में आते ही, कोई भी 'वाद' क्यों न हो, आखिर में वही करना पड़ता है जो पूंजीपतियों के हित में होता है। इसलिए कई लोग चौराहे पर बिकने के लिए खड़े मिलते हैं कि चुनाव आ-जा रहे हैं लेकिन हमारा खरीदने वाला कोई क्यों नहीं आ रहा है। इधर खरीदे जाने को उत्सुक और उधर खरीदने वाले उत्सुक; दोनों का मेल हो गया। इन खरीदारों में स्वदेशी पूंजीपति ही नहीं, विदेशी सरकारें, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष, विदेशी सरमायेदार, बहु-राष्ट्रीय कम्पनियाँ, विश्व बैंक आदि सभी शामिल हैं। इस तरह विदेशी पूंजी की पिछलग्गू सरकार होने के कारण जो हमारे पूंजीपति हैं वे भी पिछलग्गू हैं। कैपिटलिस्ट, इण्डियन मोनोपालिस्ट और भारत सरकार सभी पिछलग्गू हैं। देश उनके षड्यन्त्र जाल में फँसा है।

यह षड्यन्त्र किसके खिलाफ है ? स्पष्ट है कि आम जनता के खिलाफ। अर्थात् गरीबों और मजदूरों के खिलाफ। इसलिए यदि आम जनता सावधान होती है, इस षड्यन्त्र के विरुद्ध विद्रोह करती है तो इस साजिश का भण्डाफोड़ होता है। क्योंकि कुछ समय के लिए तो किसी को बुद्धू बनाया जा सकता है किन्तु हमेशा के लिए नहीं। उसके खिलाफ विद्रोह होगा, यह अनुमान होते ही डिक्टेटर कहता है कि हुकूमत हमारे हाथ में रहनी चाहिए। इस तरह तानाशाही का खतरा निर्माण होता है। पैसे देने वाले भी चाहते हैं कि हमारे ग्राहक (क्लायण्ट) हैं, इसी प्रकार लेते-देते रहें। नव-स्वतन्त्र राष्ट्र का इतिहास इसी प्रकार का है। इससे केवल आर्थिक खतरा ही नहीं, तानाशाही आने का भी खतरा है। विदेशी पूंजी के हाथ देश को बेचने का मतलब सार्वभौम रूप से गरीबों और देश के आर्थिक शोषण की अनुमति और अवसर देना। यह षड्यन्त्र और खतरा गरीबों के खिलाफ ही नहीं, लोकतन्त्र के खिलाफ भी है। इससे हमारी आर्थिक स्वतन्त्रता समाप्त होगी। हमारा सार्वभौमत्व समाप्त होगा। इसलिए इसका विरोध करने के लिए लोकतन्त्र में विश्वास करने वाले देश के

सभी नेताओं का मोर्चा बनाया जाना चाहिए। अपने देश की स्वतन्त्रता बेची जाय, यह तो कोई पसन्द नहीं कर सकता।

अपने देश की स्वतन्त्रता बेची जा रही है यह जानकारी सभी देशभक्तों को, चाहे वे गरीब हों या न हों, मजदूर हों या न हों, दी जानी चाहिए। क्योंकि केवल गरीब और मजदूर ही नहीं, सभी इसके शिकार हैं।

इस षड्यन्त्र का भण्डाफोड़ जिस ढंग से भारतीय मजदूर संघ ने किया, मैं बहुत नम्रता से कहता हूँ अन्य किसी ने नहीं किया।

यह हम क्यों कहते हैं? चूंकि हम राष्ट्रवादी हैं इसलिए कहते हैं। भारतीय मजदूर संघ के दृष्टिकोण में यह सारी बात है। उसके कारण डी० ए० और बोनस पर असर पड़ने वाला नहीं है। हिन्दुस्थान के मजदूर आन्दोलन में जो कमी है उसकी पूर्ति के लिए यह आधार है। प्रयास चल रहा है। भारतीय मजदूर संघ ने राष्ट्रहित को सर्वप्रथम रखा है। मजदूर-हित और राष्ट्र-हित में अन्तर नहीं है तो भी प्राथमिकता की दृष्टि से यदि फर्क करना होगा तो हम राष्ट्र-हित को सर्वोपरि रखेंगे। हम वास्तविक मजदूर संघ हैं। मान लीजिए मजदूर-हित और संस्थागत-हित में फर्क नहीं है। फिर भी हम मजदूर-हित को सर्वप्रथम रखेंगे। इसके लिए भारतीय मजदूर संघ ने आपको तैयार कर रखा है। यह सेवा का एक माध्यम है। हम किस उद्देश्य से कार्य कर रहे हैं, यह ध्यान में आना चाहिए। हमारा उद्देश्य है हिन्दुस्थान के मजदूर आन्दोलन में जो त्रुटि है उसे ठीक करना। लोग अभी तक यही समझते रहे कि मजदूर और मालिक दो ही पक्ष हैं। वे यह भूल गए कि एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पक्ष राष्ट्र भी है।

आम जनता को विश्वास में लेने का प्रयास

उपभोक्ता का हित राष्ट्र-हित सरीखा ही है। इसका भी विचार करना है, यह बात कभी किसी के ध्यान में नहीं आई। आन्दोलन के समय आम जनता को अपनी माँगों के विषय में कभी विश्वास में लेने का प्रयास नहीं किया गया। उसकी सहानुभूति प्राप्त करने की कभी कोशिश नहीं की गई। बम्बई के लोगों को अभी-अभी का उदाहरण ख्याल में होगा। वहाँ हड़ताल हुई। उन्होंने जनसम्पर्क निर्माण नहीं किए। मजदूरों की अपनी ताकत के अहंकार में रहे।

मैनेजमेंट ने जनसम्पर्क निर्माण किया। जनता को सही-गलत बताया। उसका परिणाम यह हुआ कि मजदूर हार गए। जब देशव्यापी हड़ताल हुई, आम जनता को यह बताने वाला कोई नहीं था कि हड़ताल का मुख्य कारण क्या है। एक तरफ सरकार, दूसरी तरफ आम जनता और मजदूर, यह दृश्य उपस्थित करना उचित होता। प्राय: हड़ताल के समय दिखाई देता है कि लम्बे समय तक आन्दोलन चलने के कारण जनता मजदूरों के खिलाफ हो रही है और सारा देश, सरकार और मैनेजमेंट दूसरी तरफ और अकेला मजदूर एक तरफ। आमतौर पर यही होता है। इंटक को काम करते चौंतीस साल हुए परन्तु इस स्थिति में कोई अन्तर नहीं आया। यदि थोड़े-थोड़े प्रयास भी होते तो स्थिति कुछ और होती। परन्तु उस दिशा में अभी तक कोई प्रयास नहीं हुआ।

यह जो सारे तथ्य सामने रखे हैं या यह जो भूमिका बाँधी है, वह इसलिए कि हम यह कार्य कर रहे हैं। आज हम बड़े पैमाने पर निगोसियेशन ही नहीं करते, हमने सम्बन्ध और सम्पर्क बढ़ाने का प्रयास भी किया है। जहाँ हमने हड़ताल की है, वहाँ जो भी हमारे उपलब्ध साधन हैं उनके सहारे आम जनता को विश्वास में लेने का प्रयास भी किया है। तो यह सब जो चल रहा है उसका अलग-अलग विचार मत कीजिए। हड़ताल के अलग तर्क, परिणाम के अलग तर्क। यह अलग-अलग विचार उचित नहीं है। यह मजदूर आन्दोलन की भारी त्रुटि है। मजदूर और सर्वसाधारण जनता के बीच सम्पर्क निर्माण करने का काम हम कर रहे हैं। यह कार्य किसी एक विशेष उद्देश्य से चल रहा है। इसे हमने भाषा नहीं दी, स्पष्ट नहीं कहा, परन्तु यह सम्बन्ध पूर्ति करने का काम अपने ढंग से भारतीय मजदूर संघ कर रहा है।

मजदूर आन्दोलन को यह जो एक नया आयाम देने की तैयारी हम कर रहे हैं, या मजदूर आन्दोलन को यह जो नया आयाम हम देने जा रहे हैं उसके आधार पर एक नया अध्याय जोड़ा जा सकता है। यही वह विशेष दृष्टिकोण है जिसकी हम तैयारी कर रहे हैं।

□

३

कार्य और कार्यकर्ता

अपने बीच में कुछ ऐसे कार्यकर्ता थे जो गत अनेक वर्षों से लगातार भारतीय मजदूर संघ का काम कर रहे थे। उनमें एक धुन थी। उसके कारण उन्होंने अपने शरीर की तरफ भी ध्यान नहीं दिया, बाकी बातों पर भी कुछ ध्यान नहीं दिया। काम करते-करते उनकी मृत्यु हो गई। कुछ ऐसे प्रमुख कार्यकर्ता भी थे कि मजदूर संघ का ही काम करते-करते जिनकी किसी दुर्घटना में मृत्यु हो गई। कुछ की हत्या भी हुई। ऐसे भारतीय मजदूर संघ का काम करते-करते जिनका जीवन समाप्त हुआ, जिनको हम हुतात्मा कह सकते हैं, शहीद कह सकते हैं, और जो हमारी इस पंक्ति को चरितार्थ करते हैं कि 'भगवा ध्वज अपनाया है तो मोह कहाँ इन प्राणों का'; अपने-अपने प्रदेश के ऐसे लोगों का नाम आप एक-एक करके गिनाएँ तो अच्छा रहेगा। अंग्रेजी में इसको 'रोल कॉल ऑफ ऑनर' कहते हैं।

इसका अर्थ है, कार्य करते-करते जो लोग मर जाते हैं, उनकी गणना, उनकी तालिका, उनका स्मरण। भारतीय मजदूर संघ का भी क्या अपना कोई 'रोल कॉल आफ आनर' है ? यदि है तो यह क्या है ? इस दृष्टि से निःसंकोच अपने-अपने ख्याल में जो नाम आते हैं वह आप बताते जाइए। इसका तात्पर्य मात्र इतना ही है कि इस बैठक में अपने पास ऐसे लोगों की पूरी सूची आ जाए जो कार्य करते-करते मृत हुए हैं। फिर चाहे वह हत्या के कारण हो या दुर्घटना अथवा कार्य करते-करते बीमार होने के कारण हो। वैसे तो मृत व्यक्तियों को अपने अधिवेशनों में हम लोग श्रद्धांजलि देते हैं लेकिन यह अलग बात है और इस प्रकार अपने साथियों-सहयोगियों का स्मरण करना उससे एकदम भिन्न बात है। उनको स्मरण करने से हमें बल मिलता है।

भारतीय मजदूर संघ का आधार

भारतीय मजदूर संघ के जो कार्यकर्ता कार्य करते-करते चल बसे उनका इस प्रकार स्मरण किये जाने को मराठी में **'कर्मो पवित्रे, सुगुण चरित्रे, हरिचि वर्णा'** कहते हैं। कर्म-पवित्र और गुण-सच्चरित्र हरिभक्तों का वर्णन करने और ध्यान करते जाने से कार्य में सफलता प्राप्त होती है। हम सब लोग जानते हैं कि भारतीय मजदूर संघ का आज का जो विस्तार है, जो सफलता भारतीय मजदूर संघ ने पाई है उसका आधार भारतीय मजदूर संघ का कार्यकर्ता है। तत्त्वज्ञान कितना ही बड़ा क्यों न हो, लेकिन उस तत्त्वज्ञान को चरितार्थ करने वाले, जीवन में आचरण करने वाले कार्यकर्ता अगर उसके पीछे खड़े नहीं होते तो उस तत्त्वज्ञान की दुनिया में कोई कीमत नहीं होती। हमको याद है जब हम परतन्त्र थे, उस समय हमारे देश के परम श्रेष्ठ कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर जापान गए। वहाँ उनका भाषण था। उनका भाषण सुनने के लिए कुछ लोग तो गए ही थे, लेकिन कुछ लोग नहीं गए। जो लोग नहीं गए उनसे पूछा गया कि, "भाई, आप रवीन्द्रनाथ ठाकुर को सुनने क्यों नहीं गए ?" तो उन्होंने कहा कि "जिस देश में दुनिया के श्रेष्ठ कवि पैदा होते हैं, वह देश अगर स्वतन्त्र नहीं हो सकता तो उसकी कौन सुनेगा ?" तत्त्वज्ञान बड़ा होगा, लेकिन जीवन में उसका अगर साक्षात्कार नहीं है, तो उस तत्त्वज्ञान का कोई

इसका अर्थ है, कार्य करते-करते जो लोग मर जाते हैं, उनकी गणना, उनकी तालिका, उनका स्मरण। भारतीय मजदूर संघ का भी क्या अपना कोई 'रोल कॉल आफ आनर' है ? यदि है तो यह क्या है ? इस दृष्टि से निःसंकोच अपने-अपने ख्याल में जो नाम आते हैं वह आप बताते जाइए। इसका तात्पर्य मात्र इतना ही है कि इस बैठक में अपने पास ऐसे लोगों की पूरी सूची आ जाए जो कार्य करते-करते मृत हुए हैं। फिर चाहे वह हत्या के कारण हो या दुर्घटना अथवा कार्य करते-करते बीमार होने के कारण हो। वैसे तो मृत व्यक्तियों को अपने अधिवेशनों में हम लोग श्रद्धांजलि देते हैं लेकिन यह अलग बात है और इस प्रकार अपने साथियों-सहयोगियों का स्मरण करना उससे एकदम भिन्न बात है। उनको स्मरण करने से हमें बल मिलता है।

भारतीय मजदूर संघ का आधार

भारतीय मजदूर संघ के जो कार्यकर्ता कार्य करते-करते चल बसे उनका इस प्रकार स्मरण किये जाने को मराठी में **'कर्मो पवित्रे, सुगुण चरित्रे, हरिचि वर्णा'** कहते हैं। कर्म-पवित्र और गुण-सच्चरित्र हरिभक्तों का वर्णन करने और ध्यान करते जाने से कार्य में सफलता प्राप्त होती है। हम सब लोग जानते हैं कि भारतीय मजदूर संघ का आज का जो विस्तार है, जो सफलता भारतीय मजदूर संघ ने पाई है उसका आधार भारतीय मजदूर संघ का कार्यकर्ता है। तत्त्वज्ञान कितना ही बड़ा क्यों न हो, लेकिन उस तत्त्वज्ञान को चरितार्थ करने वाले, जीवन में आचरण करने वाले कार्यकर्ता अगर उसके पीछे खड़े नहीं होते तो उस तत्त्वज्ञान की दुनिया में कोई कीमत नहीं होती। हमको याद है जब हम परतन्त्र थे, उस समय हमारे देश के परम श्रेष्ठ कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर जापान गए। वहाँ उनका भाषण था। उनका भाषण सुनने के लिए कुछ लोग तो गए ही थे, लेकिन कुछ लोग नहीं गए। जो लोग नहीं गए उनसे पूछा गया कि, "भाई, आप रवीन्द्रनाथ ठाकुर को सुनने क्यों नहीं गए ?" तो उन्होंने कहा कि "जिस देश में दुनिया के श्रेष्ठ कवि पैदा होते हैं, वह देश अगर स्वतन्त्र नहीं हो सकता तो उसकी कौन सुनेगा ?" तत्त्वज्ञान बड़ा होगा, लेकिन जीवन में उसका अगर साक्षात्कार नहीं है, तो उस तत्त्वज्ञान का कोई

उपयोग नहीं। इस दृष्टि से तत्त्वज्ञान को आचरण में लाने वाला आदमी अगर मनुष्यत्व से देवत्व तक जाने का प्रयत्न करेगा तो नर से नारायण हो सकता है। लेकिन यह कब होता है? जब नर को नारायण बनाने वाले कार्यकर्ता स्थान-स्थान पर खड़े हो जाते हैं। भारतीय मजदूर संघ जो आज खड़ा है, बढ़ा है, उसका मूल आधार कार्यकर्ता है।

हम विचार करें कि जब भारतीय मजदूर संघ प्रारम्भ हुआ तो हमारे पास क्या था? क्या किसी बड़े नेता का आशीर्वाद था? क्या हमारे पीछे कोई बड़े धन का कोष था? क्या था हमारे पास? कुछ नहीं। केवल एक चीज थी, और वह थी हमारी ध्येयनिष्ठा। इस देश के दलित और पीड़ित जनों का भाग्य जगाने की तीव्र इच्छा, महत्त्वाकांक्षा। इसी एकमेव इच्छा के साथ हमने अपने कार्य का प्रारम्भ किया और यह मन में बैठा लिया कि यह कार्यकर्ताओं के आधार पर ही खड़ा होगा। भारतीय मजदूर संघ खड़ा हुआ तो उसके पास कोई साहित्य (लिटरेचर) भी नहीं था। पहले छोटी-छोटी पुस्तिकाएँ लिखी गईं, 'योर इक्युपमेंट', 'योर आफिस'। छोटे-छोटे कार्यकर्ता कार्य करने के लिए आगे आए तो उन्हें विफल नहीं होना चाहिए, इसलिए उसकी तैयारी कराना कि समझ लो कि कार्य करते समय हमको क्या-क्या जानकारी होनी चाहिए। अपना कार्यालय कैसा होना चाहिए? उसमें क्या-क्या होना चाहिए? उसके लिए किताबें निकालीं। प्रारम्भ में ऐसी छोटी-छोटी बातों को ध्यान में रखते हुए, छोटे-छोटे और एक-एक कार्यकर्ता को सफल बनाने के लिए परिश्रम करना पड़ता है। यह सोच-समझकर भारतीय मजदूर संघ के कार्यकर्ताओं ने प्रयत्न किए हैं, इसी कारण इतने कार्यकर्ता पैदा हुए।

एक दूसरा भी विचार मन में आया कि प्रारम्भ से भारतीय मजदूर संघ को जिन्होंने अपने खून-पसीने से सींचकर बढ़ाया, वे सारे चले गए। एक-एक कार्यकर्ता को खड़ा करने के लिए कितना कष्ट उठाना पड़ता है, हम सब इसके गवाह हैं। कार्यकर्ता इस कार्य में इतने तन्मय हैं कि दूसरी किसी भी चीज को इसके मुकाबले में स्थान नहीं देते। एक-एक कार्यकर्ता, छोटा-छोटा कार्यकर्ता स्थान-स्थान पर खड़ा करें और वह कार्यकर्ता कैसा हो? सालों-साल से इस क्षेत्र में काम

करने का जिन्होंने एक दृष्टि से ठेका ले रखा है, ऐसे लोगों के मुकाबले में एक छोटा कार्यकर्ता खड़ा करना और उसको सफल बनाना है। उसके बाद किताब आई 'भारतीय मजदूर संघ क्यों ?' और वह प्रकाशित हुई। कार्यकर्ता की गुणवत्ता बढ़ाते-बढ़ाते उसका विकास करना और फिर उसके अनुसार उसको उत्साह, विचार, ज्ञान और तत्त्वज्ञान का एक दर्शन देकर खड़ा करना, यह भारतीय मजदूर संघ की पद्धति है। यहाँ बैठे हुए हम सभी कार्यकर्ता कई वर्षों से काम करते आ रहे हैं। कई लोगों ने दो-तीन अभ्यास वर्गों में भी भाग लिया होगा और उसके कारण तथा अपने जो प्रमुख कार्यकर्ता प्रदेशों एवं देश में भ्रमण करते रहते हैं, उनके कारण हमको अपने ध्येय का दर्शन हुआ है।

हमारा ध्येय

हमारा ध्येय और लक्ष्य क्या है ? हमारा लक्ष्य केवल एक यूनियन या एक फेडरेशन चलाने का नहीं है, अपितु एक ऐसा विशाल संगठन खड़ा करना है कि जिस संगठन के जरिए हम इस देश के दलित-पीड़ित जनों की सेवा कर सकें, उनका आर्थिक शोषण रोक सकें, उनकी आर्थिक अवस्था सुधार सकें, उनके जीवन में सुनहरे दिन ला सकें और इसके लिए जो कुछ भी करने की आवश्यकता पड़े, वह करें। अगर कानून उसकी रक्षा नहीं कर सकता, उसको बढ़ावा नहीं दे सकता तो उस कानून को बदलना है। कानून बदलवाने की कोशिश करेंगे। जिस अर्थव्यवस्था में आज देश फँसा हुआ है, वह अर्थव्यवस्था अगर यह गारण्टी देती दिखाई नहीं देती कि इसके अन्दर दलित-पीड़ित ऊपर उठ सकते हैं तो इस अर्थव्यवस्था को बदल डालेंगे। यह ध्येय लेकर के हम चलें।

ध्येयवादी जीवन

अभी थोड़ी देर पहले हमारे सामने कार्यकर्ताओं का जो एक-एक नाम आया उसमें कई लोगों ने यह बताया कि काम करते-करते अपने स्वयं के परिवार की ओर ध्यान देने के लिए भी उनके पास समय नहीं था। उन कार्यकर्ताओं की हालत क्या हुई, हम सब जानते हैं। मुझे ज्यादा वर्णन करने की जरूरत नहीं है। बाहर अपने साथ जो मजदूर जुड़े हैं उनकी समस्याएँ सुलझाने, उनके लिए जूझने, उनके

ऊपर जो आपत्तियाँ आती हैं उनको दूर करने में समय लगाना पड़ता है। अपने यहाँ आफिस में काम करने वाले कई लोग हैं। आफिस छूटने के बाद रात के नौ बजे, दस बजे, ग्यारह बजे घर जाते हैं। तब सब सोए रहते हैं। आफिस में तो वह 'हमारा यह काम नहीं हुआ', 'आपकी यूनियन क्या करती है', 'अभी तक हमारा ट्रांसफर कैंसिल नहीं हुआ', 'हमको बढ़ोत्तरी नहीं मिली', वगैरह-वगैरह कर्मचारियों से सुनता है। घर जाता है तो वहाँ घर वालों की भी कुछ न कुछ सुननी पड़ती है। जिसको घर में कुछ सुनना नहीं पड़ता है, उसको कार्यकर्ता कहना कठिन है। यानी कार्यकर्ता को घर और बाहर, दोनों जगह गालियाँ खानी पड़ती हैं। वह देरी से आता है। घर के प्रति ख्याल नहीं, बच्चों के प्रति ख्याल नहीं, उनकी शिक्षा के प्रति ख्याल नहीं, उनकी तबीयत के प्रति ख्याल नहीं; इतना ही नहीं, स्वयं के प्रति भी ख्याल नहीं—इस कारण घर वाले नाराज ! मजदूरों का काम नहीं हुआ तो मजदूर नाराज। इसी कारण उन शहीद कार्यकर्ताओं का स्मरण आज हमने किया है।

हम विचार करें कि यह सब क्यों होता है ? कोई भी आदमी एक दिन भी क्या यह सब कुछ कर सकता है ? मैं देखता हूँ भारतीय मजदूर संघ जब से प्रारम्भ हुआ तब से आज तक कई कार्यकर्ता उसी जगह पर, उसी एक धुन से कार्य करते हुए दिखाई देते हैं। रात को दस बजे, ग्यारह बजे घर आते हैं। सालोंसाल से ऐसा ही चलता चला आ रहा है। वह यह सब कैसे कर पाता है ? इसका कारण यह है कि उसके मन में ध्येय-प्राप्ति की एक तीव्र इच्छा जगी और अपना व्यक्तिगत जीवन भूल गया। उसका जीवन सामान्य व्यक्तियों जैसा जीवन नहीं है। हमारे यहाँ एक कार्यकर्ता थे। मीसा में वह जेल में गए तो उनके घर की कठिनाइयों की जानकारी प्राप्त करने हम उनके घर गए। वहाँ जाने के बाद उनकी पत्नी से बात हुई तो उससे पूछा, "कुछ कठिनाई है क्या ? आर्थिक कठिनाई है क्या ?" तो उसने कहा, "आर्थिक कठिनाई काहे की। आज तक जीवन में इतने दिन नौकरी करते हुए भी कभी इतनी पगार हमारे घर में नहीं आई, इतना वेतन हमारे घर में नहीं आया।" जेल में होने के कारण आधा वेतन मिलता था। यानी जब वे काम करते थे तब उनको इतनी छुट्टियाँ लेनी पड़ती थीं कि आधी पगार भी वह घर में नहीं ले जा

सकते थे। ऐसे कार्यकर्ताओं के कारण भारतीय मजदूर संघ बना है। यह त्याग जीवन भर का त्याग है। एक दिन जलना आसान है, जीवन भर जलते रहना बहुत कठिन है। यह कठिन कार्य आज हम मजदूर संघ के कार्यकर्ता को करते हुए देखते हैं। जैसे अभी-अभी हमने सुना कि एक व्यक्ति गोली का शिकार बन गया। क्या कसूर था उसका ? भारतीय मजदूर संघ का काम करता था, यही न ? यदि वह भारतीय मजदूर संघ का कार्य न करता होता या यह कार्य छोड़ देता तो शायद बच जाता। लेकिन जान दे दी, काम नहीं छोड़ा। एक बात मन में ठान ली कि इस कार्य को मैं करता रहूँगा, जीवन के अन्त तक करता रहूँगा, यही कार्य मेरे जीवन का गौरव है। यह कार्य करने की जो एक प्रबलतम इच्छा मन में थी उसके कारण उन्होंने यह त्याग किया। किसी ने कहा नहीं उनको, किसी ने पढ़ाया नहीं उनको, किसी ने बताया नहीं उनको। स्वयं हृदय में प्रेरणा हो गई कि मुझे इस तरह का जीवन बिताना चाहिए। हमारे बीच ऐसे कई लोग बैठे हैं जिनके बचपन के साथी किसी बड़े ओहदे पर होंगे। उनके पास कार होगी, बंगला होगा, उनके बाल-बच्चे अच्छी पढ़ाई करते होंगे, कोई विदेश गया होगा। वे साथ में पढ़ते थे, शायद इनसे उसकी बुद्धि भी कम रही होगी। किन्तु उसका जीवन और इनका जीवन। जिनको दो वक्त का खाना खाने के लिए समय नहीं मिलता, आफिस में काम करते समय मजदूर संघ का काम करने के कारण आधा वेतन भी घर में नहीं ले जा सकते, और कई बार शायद उनके मन में आता होगा कि क्या कमाया; देखो, तुम्हारे इतने साथी इस तरह का जीवन-यापन कर रहे हैं ? लेकिन कई बार अपने कार्यकर्ताओं को मैंने यह कहते सुना है कि जो आनन्द मुझे इस कार्य में मिलता है, इससे मेरे मन को जो शान्ति मिलती है, मालूम नहीं वह सब पाने के बाद मुझे मिलेगी या नहीं।

मोहम्मद साहब का उदाहरण

इस सन्दर्भ में मोहम्मद पैगम्बर का उदाहरण हमारे सामने है। लड़ाई में उनके पास बहुत-सी लूट की सम्पत्ति आ गई। लूट का माल उनके घर में आता ही रहता था। किन्तु उनके घर में शाम के समय दीया जलाने के लिए तेल भी नहीं रहता था। उनकी बीवियों के मन में आता था कि उनका पति कितना धाकड़ है, इतनी लड़ाइयाँ

जीतता है, इतना पैसा आता है, लेकिन उनको कुछ भी नहीं देता ? एक बार एक बड़ी लड़ाई में बहुत बड़ी लूट मिली। उस समय उनकी सारी बीवियों ने मिलकर सोचा कि वे मोहम्मद साहब के पास जाकर कहेंगी कि उनके लिए भी थोड़ा-सा धन रख दें। जब उन्होंने मोहम्मद साहब से यह कहा तो वे बोले, "आपका कहना ठीक है। आपको जितना चाहिए उतना धन रख सकता हूँ। मुझे कोई रोकने वाला नहीं है। लेकिन याद रखना कि जिस दिन मैं यह धन रख लूंगा उस दिन से तुम्हारा नाम मोहम्मद पैगम्बर की पत्नी के नाते से नहीं रहेगा। तुम्हारे पति का नाम मोहम्मद पैगम्बर नहीं रहेगा।" यह सुन उनकी बीवियों ने कहा—"हमें मोहम्मद साहब चाहिए, पैसा और दौलत नहीं।" जीवन किस प्रकार चरितार्थ करना चाहिए, उसकी जो मर्यादा है, उस मर्यादा में रहना ही श्रेष्ठ कार्य और जीवन है। कार नहीं मिलेगी, धन नहीं मिलेगा, नाम नहीं होगा, न हो, न मिले यह सब, इसकी चिन्ता क्या करना ?

कार नहीं चाहिए, पैसा नहीं चाहिए

ऐसा ही एक प्रसंग अपने एक कार्यकर्ता के जीवन का है। किसी एक फैक्ट्री में उन्होंने बहुत अच्छा समझौता कर लिया। समझौता करने के बाद जो अन्य दूसरी यूनियनें थीं, उन यूनियनों के कार्यकर्ताओं ने अपने नेता को एक कार दी, तब कई मजदूर अपने कार्यकर्ता के पास आकर कहने लगे कि "आपको भी हम कार देना चाहते हैं।" उस पर उन्होंने कहा, "कार तो बेकार है, नहीं चाहिए। यह कार कौन पोंछेगा ? मेरे लिए मेरी सायकिल ही भली है।" जीवन किस ढंग का हो, किस ढंग से जीवन बिताना है, यह हर कार्यकर्ता को तय कर लेना चाहिए। भारतीय मजदूर संघ के कार्यकर्ता ऐसा तय कर लेते हैं। हम देखते हैं, कई बार हमारे पूरा समय देकर काम करने वाले कार्यकर्ताओं ने इण्टरव्यू दिए। इण्टरव्यू में उन्होंने सब लोगों से कहा कि हमको जितना मिलता है, उतना काफी है। इसी में हमारी गुजर हो जायेगी। ज्यादा बढ़ाने की जरूरत नहीं है। उन्होंने जब हमको अपने अनुभव बताये तो हमको लगा कि कितने विशाल विचारों वाले कार्यकर्ताओं के साथ हम काम कर रहे हैं। अभी-अभी की घटना है। अपना पूरा समय देकर काम करने वाले कार्यकर्ता हमसे कुछ पैसा

लेते थे। लेकिन किसी कारणवश या उनके प्रयास से उनकी ऐसी स्थिति आ गई जिसके कारण उनको पैसे की जरूरत नहीं रही। उन्होंने कहा कि अगले महीने से हमको भारतीय मजदूर संघ की ओर से पैसा देने की कोई जरूरत नहीं है। क्षमा कीजिए, वह कहीं से माँगकर या किसी यूनियन से नहीं लेते थे। उन्होंने एक दूसरे तरीके से अपने घर की व्यवस्था की, उससे उन्हें पैसे मिलने लगे। कहने लगे गाँव में पूरे समय काम करने के लिए पैसे की जरूरत नहीं। वह पहले लेता था, हम देते थे। हमको लगता था, कितना कम हम दे रहे हैं, हमको शर्म लगती थी। लेकिन बाद में वही कहने लगे कि अब देने की जरूरत नहीं है। यह एक श्रेष्ठ विचार है।

यह अपनी भारतीय जीवन दृष्टि है कि जितनी मुझे आवश्यकता है उतना ही मैं लूं। मैं अपनी आवश्यकताएँ कम करूँ। हमारे यहाँ जीवनयापन और स्तर की व्याख्या यह है कि चमड़ी और हड्डियाँ साथ रहने के लिए (To put theskin and bones together) जो आवश्यक है वह न्यूनतम है। ऐसे न्यूनतम वेतन (Minimum wage) लेकर और ध्येय के साथ एकात्म होकर कार्य करने वाले कार्यकर्ता भारतीय मजदूर संघ के हैं। ये कार्यकर्ता भी कैसी-कैसी परिस्थितियों में काम करते हैं, इसका अनुमान हम लगा सकते हैं।

थैंकलैस जॉब

इस क्षेत्र की विशेषता कई बार ध्यान में आती है। दूसरे संगठन के एक बड़े अच्छे कार्यकर्ता एक बार पूना में हमारे पास आए। उन्होंने बहुत अच्छे एग्रीमेंट्स (समझौते) किए थे। समझौता करने के बाद उन्होंने यह सोचा कि अब इस क्षेत्र से मुक्ति ले लूँ। मैंने कहा, "क्यों ?" तो उन्होंने कहा कि "देखिये, अब इससे ज्यादा मैं क्या दिलाऊँगा। मुझे ऐसा नहीं लगता कि अब और अधिक दिला पाऊँगा, और अगर नहीं दिलाऊँगा तो ये सारे मजदूर मेरे साथ रहेंगे या नहीं, कुछ कह नहीं सकता।" मैंने कहा कि, "क्या अपना कार्य मजदूरों को केवल पैसे ही दिलाना है और क्या हमारे साथ केवल पैसे के लिए मजदूर आते हैं ?" तो उन्होंने कहा कि हमको तो ऐसा लगता है कि "दिस इज ए थैंकलैस जॉब।" इस क्षेत्र की विशेषता यही है यानी सिकमेन सायकोलौजी (बीमार मानसिकता) है। कोई बीमार आदमी पड़ा

हुआ है तो उसकी सेवा चलती है। घर के लोग सेवा करते हैं। बूढ़े आदमी के बारे में बहुत बार यह अनुभव होता है, उसकी सारी धारणा, संयम और शक्तियाँ खत्म हो जाती हैं। भूख लगी तो जल्दी खाना मिलना चाहिए, प्यास लगी है तो जल्दी पानी मिलना चाहिए, पेशाब लगी तो जल्दी उसको ले जाना चाहिए। ऐसी उसके शरीर की आवश्यकता होती है। अच्छी चीज देखी तो रोने लगते हैं, बुरी चीज देखी तो रोने लगते हैं। कोई प्यारा आदमी आ गया या कोई मिल गया, लड़का मिल गया तो रोने लगते हैं। ऐसी अवस्था में उनकी सेवा करने वालों को यह बार-बार अनुभव होता होगा कि वे सुबह से लेकर के शाम तक उसके काम करते हैं लेकिन केवल उसी के काम तो नहीं हैं, और भी काम होते हैं। घर चलाना पड़ता है, आने-जाने वाले लोगों से मिलना पड़ता है, काम से बाहर भी जाना पड़ता है। इसी बीच यदि मान लीजिए उसको पेशाब लग गई। वह चिल्लाया। अब हाथ का काम तत्काल छोड़कर आ पाना कई बार सम्भव नहीं होता, दो-चार मिनट तो लगते ही हैं। परन्तु इस दो मिनट में वह कितनी बातें घर वालों को सुनाता है कि "मैं बूढ़ा हो गया हूँ, मेरे प्रति किसी का ख्याल नहीं। मुझे जल्दी मरना चाहिए," आदि-आदि। अर्थात् सेवा के आज तक जो श्रेष्ठ काम किए वे सब खत्म।

यही मानसिकता कर्मचारी की भी होती है। कई संगठनों और श्रम संगठन के आज जो श्रेष्ठ कार्यकर्ता, माने हुए कार्यकर्ता हमको दिखाई देते हैं उन जैसे लोग भी यह मानते हैं। क्यों मानते हैं? इसलिए मानते हैं कि उनकी हर अवस्था में वे साक्षी थे—अच्छे दिनों में, बुरे दिनों में उनके साथ रहे। कार्यकर्ता कई काम करता है। लेकिन एक चीज उसकी कठिनाई होती है, वह है मजदूर। मालिक ने उसको गाली दी होती है, मालिक ने उसको चार्जशीट दी होती है, ये अपने काम में मस्त हैं। इसको वहाँ पर देखने के लिए समय नहीं है तो मजदूर सोचता है मेरे ऊपर इतनी बड़ी विपत्ति है और इसको चिन्ता तक नहीं है और फिर काफी बातें उसको सुननी पड़ती हैं। सौ काम किए, उसका कोई आभार नहीं। मगर एक काम नहीं किया और समय पर नहीं किया तो बुराई। और फिर यहाँ तो ऐसा है कि हर दिन नयी समस्या आती है। कल की समस्या आज बासी हो जाती है। ऐसी परिस्थिति में अपने कार्यकर्ता को सचेत रहकर, सजग रहकर,

ठीक समय पर मजदूर की छोटी से छोटी समस्या ही, कम से कम उस समय उसके साथ जाकर उससे मिलकर, बात करके कि मैं यह करूँगा, यह करूँगा—एक विश्वास दिलाने का काम करना होता है। फिर उसको भी मालूम होता है कि मेरा यह काम इतना आसान नहीं है।

मजदूर भी कार्यकर्ता को परखता है

वह मजदूर भी देखता है कि यह कार्यकर्ता लगन के साथ काम करता है या नहीं, प्रामाणिकता से काम करता है या नहीं। देखता है कि इस काम में जो कठिनाइयाँ हैं उनको पार करने की इसमें हिम्मत है या नहीं। इसमें बुद्धिमानी है या नहीं, इसमें कुशलता है या नहीं, ? अगर यह सब गुण हैं और उन सबका उपयोग करते हुए भी उसको सफलता नहीं मिलती है, तो भी वह उसको छोड़ता नहीं है। कहता है मालिक बदमाश है, ठीक है फिर से लड़ूँगा। ऐसा कहने वाले मजदूर भारतीय मजदूर संघ के क्षेत्र में दिखाई देते हैं। कार्यकर्ता सदा सफल होता रहे यह अच्छा ही है, लेकिन सफलता न मिलने पर भी मजदूर उसके ऊपर खुश रहता है। इसका कारण यह है कि वह जिस लगन के साथ काम करता है, जिस बुद्धिमानी से काम करता है, जिस कुशलता से काम करता है, मालिक के साथ जिस ढंग से जूझता है, यह देखकर के सफलता-विफलता दोनों समय वह उसके साथ बना रहता है।

हमारे कार्यकर्ताओं के ऐसे कई अनुभव हैं। ऐसे कार्यकर्ता में यदि बुद्धिमानी है और अगर उसे कचहरी का काम करना है तो कानून की जानकारी रखता है, पुराने मामले जो हैं उसके ध्यान में रहते हैं। किस विषय पर उच्च न्यायालय ने क्या निर्णय दिया है उसको ठीक-ठीक कण्ठस्थ रहता है, मालूम रहता है। वह यह भी जानता है कि जो समस्या सामने आई हुई है उसको सुलझाने के लिए पुराने सबूत तो नहीं हैं, लेकिन मुझे इसमें सफलता पानी है। इसलिए वह जूझता है, आर्गूमेंट (बहस) करता है, जोर देकर आर्गूमेंट करता है। कई बार मजिस्ट्रेट को पूछता है कि जो पुराने लोगों ने किया, अगर आप भी वही करने वाले हों तो आप में क्या विशेषता है ? अगर आपकी बुद्धि को यह ठीक लगता है तो निर्णय दे दें। आपका निर्णय देखकर बाकी लोग भी निर्णय देंगे। जब मजदूर यह सब

देखता है तो उसके पीछे वह लट्टू हो जाता है। हर कार्यकर्ता को ऐसी बुद्धिमत्ता प्राप्त करनी चाहिए। लगन के साथ काम करने की प्रवृत्ति बनानी चाहिए। यश मिले, न मिले, उसकी चिन्ता नहीं करना। यश मिलता है तो ठीक ही है, अगर नहीं मिलता है तो भी ठीक है। हमने भी कई बार कई वकीलों में देखा है। जो पुराने वकील होते हैं, किसी कारण नीचे की कोर्ट में केस हार जाते हैं। यह उनके आलस्य के कारण भी हो सकता है। मजदूर आता है, चिल्लाता है। वकील कहता है, "अरे, फिक्र मत करो। उसको कहो, तुम्हारा बाप अभी ऊपर बैठा है, देख लेंगे।" जो वकील यह कहने वाला होता है, उसके साथ मजदूर बराबर रहता है और वह जीतता है। पराजय में भी हिम्मत रखनी चाहिए। अपने सारे दिन अच्छे थोड़े ही रहते हैं। हम लोगों ने तो अच्छे दिन भी देखे हैं और बुरे दिन भी देखे हैं।

भारतीय मजदूर संघ की आयु भी अब ३० साल पार कर रही है। जब ऐसी बैठकें नहीं होती थीं, यूनियन की बैठकें नहीं होती थीं; बैठकें हो सकती थीं लेकिन होने नहीं देते थे, कहीं भी जाओ हमको कोई सहारा नहीं देता था, हमारे साथ बात करने के लिए कोई तैयार नहीं था, लेकिन भारतीय मजदूर संघ का कार्यकर्ता प्रामाणिकता, लगन और त्याग की भावना से काम करता था। उसी कारण मजदूर उन दिनों में भी भारतीय मजदूर संघ से प्रभावित था। अच्छे और बुरे दिनों में भी जो मजदूर हमारे साथ रहता है उसका कारण है कार्यकर्ता। ऐसा कहते हैं कि नदी में जब बाढ़ आती है तब पानी का क्या करेंगे ? ऐसे ही वायुमण्डल में, हवा में बदलाव आने के कारण एक दूसरा प्रवाह भारतीय मजदूर संघ में या किसी संस्था में आता है तो लोगों को लगता है कि संस्था अच्छी है। लेकिन किसी परिस्थिति में जब यह बाढ़ बन्द हो जाती है तो पानी भी मानो ऐसा लगता है कि खण्डित हो जाएगा। ऐसी अवस्था में परीक्षा होती है। इस अवस्था में अपने साथ वही रहेंगे जिन्होंने ध्येय का चिन्तन किया है, ध्येय जिनके जीवन की आत्मा बन गया है। जो उसकी प्राप्ति के लिए पूरे चौबीस घण्टे लगाता है। ऐसा कार्यकर्ता जय और पराजय, अच्छे और बुरे दिनों में, यश-अपयश के समय भी भारतीय मजदूर संघ के साथ रहता है। वह हताश नहीं होता। ऐसे कार्यकर्ता स्थान-स्थान पर खड़े हों, और विचार करें कि इस कार्य के लिए जो गुण

चाहिए, शायद वे गुण मुझमें नहीं हैं। गुण आने चाहिए। असफलता के क्षणों में यह विचार बल देता है।

अपने लिए कठोर, दूसरों के लिए मृदु

कार्यकर्ता कैसा होना चाहिए ? उसका एक गुण बताया गया— अपने प्रति, अपने सामाजिक और वैयक्तिक जीवन के प्रति ख्याल नहीं। उसके पास अपना काम करने के लिए समय ही नहीं है, अपना निज का कुछ करने की इच्छा ही नहीं। कार्य करते समय दूसरों के बारे में उसका व्यवहार कैसा रहता है ? वह पूरी शक्ति से यह प्रयास करता है और उसकी यह प्रबल इच्छा होती है कि दूसरों का जीवन सफल हो, उनको सुविधाएँ मिलें, उनका आर्थिक जीवन उन्नत हो। अपने लिए कठोर, लेकिन दूसरों के लिए मृदु। जब दूसरों का दु:ख देखकर इनके हृदय में पीड़ा होगी तभी वह यह काम कर सकेंगे। 'वैष्णव जन तो तेणे कहिए जो पीर पराई जाणे रे' पराई पीर समझने वालों को अपनी पीड़ा मालूम नहीं होती। क्योंकि अपने प्रति उनके जीवन का व्यवहार कठोर है। हमारे साथ हमारा ही व्यवहार कठोर होना कितनी बड़ी बात है। हम तो अपना कार्य करते हैं, दूसरों का क्या होता है उसकी चिन्ता क्या करना ? ऐसा सोचने वाला वैष्णव जन नहीं कहलाता। वैष्णव जन वह होता है जो खुद के बारे में अतीव कठोर हो और दूसरों के बारे में अति मृदु। "वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि", फूल से भी मृदु, वज्र से भी कठोर कार्यकर्ता ही कार्य कर सकता है।

इस प्रसंग में एक उदाहरण याद आता है। लखनऊ में कांग्रेस अधिवेशन था। रात को बड़ी देर तक सभा चली। ठण्ड बहुत थी। सुबह ठण्डी हवा थी। तिलक जी इधर-उधर दौड़-धूप में लगे थे। चूल्हे में लकड़ी डालकर दूसरों के लिए पानी गरम कर रहे थे। एक सज्जन जो उत्तर प्रदेश के ही थे, ने उनसे पूछा कि आप यह सब क्यों कर रहे हो ? तिलक जी ने उत्तर दिया कि "आप पर तो इसका कोई ज्यादा असर नहीं होता, लेकिन जो लोग दक्षिण भारत से आए हैं उनके लिए यह ठण्डक बहुत खराब होती है। इसलिए उनके स्नान के लिए गरम पानी होना चाहिए।" वह स्वयं गरम पानी से नहीं नहाते थे। अपने लिए कठोर, दूसरों के लिए मृदु। इस कारण कोई भी

काम करने में उनको लज्जा नहीं थी। भले ही काम छोटा-सा ही क्यों न हो। इतना ही नहीं, छोटा और कठिन काम वे स्वयं करेंगे और जो अच्छा काम होगा, आसान काम होगा, वह दूसरे को दे देंगे। यह कार्यकर्ता के विचार की प्रणाली है और इसी के कारण ऐसे कार्यकर्ता के सामने बड़े-बड़े लोग, ज्ञानी, जाने-माने लोग भी झुक जाते हैं। हम सोचें कि तिलक जी का यह उदाहरण देखने के बाद लोगों के मन में क्या विचार आया होगा ?

छोटा काम : परमात्मा की सेवा

एक और उदाहरण। जिनके जीवन का प्रभाव हजारों साल से अपने सामाजिक जीवन पर है उन श्रीकृष्ण की एक कथा है। युधिष्ठिर का राजसूय यज्ञ था। राजसूय यज्ञ में हर एक राजा को काम करना पड़ता है। उनको काम बाँट दिया जाता है। अब समस्या यह आई कि एक-एक प्रदेश का राजा क्या काम करे। अच्छा काम प्राप्त करने की होड़ लगी। उस समय कई राजाओं को परास्त करने वाले श्रीकृष्ण जी ने कहा कि "देखो, मुझे एक काम दे दो। इन सब राजाओं के भोजन के बाद इनकी जूठी पत्तलें उठाने और आगत राजाओं के पैर धोने का काम मुझे दे दो।" स्पष्ट है जब सबसे बड़ा व्यक्ति सबसे छोटा काम करता है तब सन्तुलन कभी बिगड़ता नहीं। समाज का सन्तुलन भी तब नहीं बिगड़ता। यह छोटा काम करते समय उसको ऐसा लगता है कि मैं परमात्मा की ही सेवा कर रहा हूँ। विवेकानन्द जी ने भी तो यही कहा था, "जब तक इस देश का एक कुत्ता भी भूखा है, तब तक मुझे शान्ति नहीं।" उन्हें भूखे कुत्ते की चिन्ता थी। सन्त एकनाथ जी के जीवन का एक प्रसंग है। काशी से रामेश्वरम् के लिए गंगाजल ले जा रहे थे। उन्होंने रास्ते में देखा, एक गधा पानी के लिए तड़फ रहा है। गंगाजल उसको पिला दिया। उन्होंने सोचा कि उसकी आत्मा अगर शान्त होती है तो प्रभु मुझे वही पुण्य देगा जो मैं यह गंगाजल रामेश्वरम् तक ढोकर पाता।

छोटे-छोटे लोगों के छोटे-छोटे काम, उनके प्रति भी ख्याल देता है और उसमें अपने लिए कोई नीचपन है ऐसा नहीं सोचता है। उल्टे कार्यकर्ता अगर यह समझने लगेगा कि इन्हीं कामों में परमात्मा की भक्ति है, परमात्मा की सेवा है तो उसका विकास होगा। भारतीय

मजदूर संघ का कार्यकर्ता ऐसा सोचता है इसीलिए तो यह काम बढ़ता जा रहा है। दूसरे संगठनों का कोई कार्यकर्ता ऐसा नहीं सोचता।

कठिनाइयों में भी अडिग

नये-नये स्थानों पर काम शुरू होता है। कई बार कठिनाई भी आती है। जहाँ काम अच्छा है वहाँ किसी न किसी परिस्थिति के कारण जब काम कम हो जाता है तो सामान्य कार्यकर्ता का दिल बैठ जाता है। कहता है कि यह कैसे होगा ? मैं अब क्या करूँ ? ऐसे समय उसे ऐसा सोचना चाहिए कि विभिन्न प्रदेशों में जो नये-नये कार्यकर्ता गए थे वे क्या सोचते रहे होंगे ? उनका कौन साथी था ? कौन उनके साथ काम करता था ? क्या उनके पास साधन थे ? कार्यकर्ता का यह सोचने का ढंग होता है कि जब साधन नहीं, साथी नहीं, तो भी उन्हें काम करना है और करेंगे, यशस्वी होकर के रहेंगे। बार-बार गोस्वामी तुलसीदास जी का कहना याद आता है, "रावण रथी था, लेकिन रामचन्द्र पैदल थे। दोनों का युद्ध चल रहा था—विषम युद्ध। किन्तु राम विजयी हुए।" विषम परिस्थिति में भी मैं सफल होने वाला हूँ, होऊँगा। मैं अपनी लगन के साथ अपने ध्येय की प्राप्ति के लिए कोशिश करता रहूँगा, आज तक बड़े-बड़े लोगों ने यही किया है, उसी मार्ग पर मुझे चलना है, ऐसा सोचकर जो कार्यकर्ता काम करता है वही यशस्वी होता है। 'रावण रथी, विरथ रघुराई'—हमारे कार्यकर्ता के सोचने का यह ढंग होता है।

काँच के समान निष्कलंक

हमारे कार्य का आधार कार्यकर्ता है। हमारा कार्य कार्यकर्ताओं के कारण ही बढ़ने वाला या घटने वाला है। यही हमारा साधन है। यह साधन स्वच्छ रहना चाहिए। हमारे कार्यकर्ताओं के कारण ही लोगों को हमारे ध्येय का दर्शन होने वाला है। भगवान के दर्शन अगर भक्त के माध्यम से होना है तो भक्त कैसा रहना चाहिए ? उसके लिए एक उदाहरण है दीप ज्योति का। वह आँधी में भी जलती रहे, अच्छे ढंग से जलती रहे, इसलिए लालटेन में एक काँच लगाया जाता है। वह काँच लगाने से प्रकाश अच्छा आता है। पवन का झोंका भी आ गया तो भी वह ज्योति बुझती नहीं, हमको

प्रकाश मिलता है। इस काँच में से हम ज्योति को देखते हैं। इस काँच में यदि धूल लग गई तो प्रकाश अच्छा नहीं आएगा, इस काँच को कोई रंग लग गया तो ज्योति उस रंग जैसी दिखेगी। इसलिए हमारा कार्यकर्ता, यानी जिनके द्वारा लोगों को हमारे ध्येय का दर्शन होने वाला है, उस काँच के जैसा निष्कलंक होना चाहिए—स्वयं का कोई लाल नहीं, पीला रंग नहीं। ध्येय के अनुरूप अपना जीवन स्वच्छ, निर्मल बने कि मेरे माध्यम से ध्येयदर्शन अच्छा होगा तो इस ध्येय के बारे में लोगों के मन में धारणा भी अच्छी होगी।

अहंकारहीन

कई कार्यकर्ताओं को अपने कार्य में मिली सफलता के कारण जब प्रशंसा मिलती है तब उन्हें लगता है, "मैं जो कहता हूँ वही सत्य है। मेरा जो कहना है वही वास्तव में इस तत्त्वज्ञान का कहना है।" मन में ऐसा एक अहंकार आता है। अब इस अहंकार को लेकर अगर हम दुनिया में गए तो उस ध्येय का दर्शन अहंकार के काँच से मिलने के कारण धूमिल होगा। लोगों को अहंकार का दर्शन होगा। इसलिए अहंकार नहीं रखना चाहिए। अगर अपना अच्छा कार्यकर्ता, बड़ा कार्यकर्ता अपने पद और स्थान की बात कहे कि हाँ, मैं प्रेसिडेण्ट हूँ, मैं जनरल सेक्रेटरी हूँ, मैं फलाना हूं, मैं ढिकाना हूँ, मैं कितना बड़ा हूँ, तो यह ठीक नहीं है। क्या बड़प्पन कहने से आता है? पद से आता है? नहीं, बड़प्पन तपने से आता है। सोना जब भट्टी में तपता है, तभी अच्छा बनकर बाहर निकलता है।

नेपोलियन जब आदर्शवाद खो बैठा और पोजीशन के पीछे लगा तो उसने एक बात कही जो बहुत प्रसिद्ध है—

"Men are like figures. They are valued according to the position they occupy."

अर्थात् व्यक्ति अंकों के समान हैं। उनका बड़प्पन इस बात पर अवलम्बित है कि वे किस स्थान पर हैं। और उसने उदाहरण दिया ११११ का। ११११ में चार बार १ आता है। लेकिन प्रत्येक १ (एक) का मूल्य अलग-अलग है। आखिर में जो आता है उसका मूल्य एक है। अन्तिम से पहले के १ का मूल्य दस है। उसके बाद वाले का सौ और उसके बाद वाले का हजार है। यद्यपि सभी का

अन्तर्गत यथार्थ (Intrinsic worth) एक ही है; लेकिन स्थान (Position) बदल जाने से एक की कीमत एक, एक की दस, एक की सौ और एक की हजार हो गई। इस प्रकार उसने कहा कि एक व्यक्ति जितने ऊँचे पद पर जायेगा, उतना ही उसका बड़प्पन बढ़ेगा। आज अधिकांश लोग ऐसा ही सोचते हैं।

किन्तु हमारा विचार ऐसा नहीं। हमारा विचार है कि व्यक्ति का बड़प्पन पद से नहीं, उसकी आन्तरिक गुणवत्ता बढ़ने से आता है। यदि किसी कार्यकर्ता ने सोचा कि मेरा पद बढ़ गया है इसलिए मेरे में गुण बढ़ गए हैं किन्तु गुण बढ़ाने के लिए जो तपस्या करनी चाहिए, तप करना चाहिए, तपना चाहिए, जलना चाहिए, वह नहीं है, तो क्या वे गुण टिकाऊ होंगे ?

आदत न बिगड़े

त्याग, तपस्या और बलिदान से गुणवत्ता बढ़ती है ? हमने एक सिनेमा देखा था। वही बताकर के यह विषय पूरा करता हूँ। उसमें एक मजदूर कार्यकर्ता का दर्शन आता है। वह मजदूर कार्यकर्ता चीफ मिनिस्टर से बात करता है। बड़ी स्पष्ट बात करता है, फलाना काम नहीं किया तो जूते से मारूँगा, आदि-आदि बात करता है। अब इसमें अगर असफलता आ गयी तो क्या हो गया, इत्यादि। उसके साथ एक महिला सेक्रेटरी रहती है। वह बात करता रहता है और कहता है कि मुझे क्या है मैं तो पहले की तरह दुकान के सामने पटरियों पर सो जाऊँगा, मुझे तो आदत है, तो वह महिला कहती है कि अब वह आदत छूट गई है। अब तो गाड़ी में बैठने की आदत है। अब वैसा नहीं कर सकोगे। इसलिए कार्यकर्ता को यह सोचना चाहिए कि मेरी आदत तो नहीं बिगड़ रही है। कल तक मैं अपने किसी कार्यकर्ता के घर में भी आनन्द से रहता था। अब मान्यता मिल गई, नेगोसिएशन के लिए जाते हैं, कमेटीज के लिए जाते हैं, टी० ए०-डी० ए० काफी मिलता है, वहाँ रहने का प्रबन्ध भी काफी अच्छा होता है। जिस कार्यकर्ता को यह आदत लग गई, उसे किसी कार्यकर्ता के छोटे घर में आनन्द नहीं मिलेगा, उसे असुविधा होने लगेगी। अतः स्वयं के बारे में सोचना चाहिए कि मेरी यह आदत छूट गई है, बिगड़ गई है या सही है। अगर उस कार्यकर्ता की आदतें वही

सादगी की आदतें हैं तो वह कार्यकर्ता सफल होगा ही। कोई आपत्ति-विपत्ति उसको उसके मार्ग से पीछे नहीं हटा सकती।

आदमी अपने मार्ग से पीछे क्यों हटता है ? इसलिए कि वह यह सोचने लग जाता है कि वहाँ दु:ख भोगना पड़ता है ? दु:ख क्या होता है ? किसमें दु:ख है ? बंगला छोड़ने में ? वाहन नहीं मिला, इसमें ? हमने एक कार्यकर्ता से पूछा कि मीटिंग में क्यों नहीं आए ? उसने कहा कि क्या करें, वाहन ही नहीं मिला यानी स्कूटर नहीं मिला। जब उसके पास स्कूटर नहीं था तब यह कार्यकर्ता बराबर समय पर मीटिंग में आता था। लेकिन स्कूटर की आदत लग गई। अब स्कूटर नहीं है तो बैठक में कैसे जाऊँ, यह विचार मन में आने लगे तो समझ लेना चाहिए कि आदत बिगड़ गई। कार्यकर्ता को हमेशा यह सोचते रहना चाहिए कि मेरी आदतें तो नहीं बिगड़ गईं। अच्छा कपड़ा मिलता है, पहन लो। लोग जैसा पहनते हैं वैसा पहन लो, जैसा खाते हैं वैसा खाओ। लेकिन खाने-पीने, रहने, बात करने, उठने-बैठने में हमारी आदतें तो नहीं बिगड़ रहीं, यह सोचते रहना चाहिए। हमको जहाँ जाना है यदि अच्छे कपड़े पहनकर नहीं गए तो इज्जत नहीं होगी, यह विचार उचित नहीं। क्या कपड़े पर से हमारी इज्जत होने वाली है ? जैसे कल जाते थे वैसे आज भी जाएँगे। कोई बहुत अच्छा कार्यकर्ता है, इसलिए वह गन्दे कपड़े पहनकर आता है, यह भी सही नहीं है।

मस्ती बढ़ाइये

परमात्मा की भक्ति की धुन जिसके ऊपर चढ़ती है उसको बाहर का कोई विचार नहीं रहता कि क्या खाते हैं, क्या पहनते हैं, कैसे रहते हैं, कैसे सोते हैं, कहाँ सोते हैं ? उस मस्ती और धुन में वह चलता रहता है। वह कार्य की धुन, मस्ती, हमारे जीवन, हमारे व्यवहार से खत्म तो नहीं हो गई इसके बारे में चिन्तन करते रहना आवश्यक है। भारतीय मजदूर संघ का कार्यकर्ता इसी मस्ती में रहता है, इसलिए भारतीय मजदूर संघ बढ़ता है। इसी मस्ती को बढ़ाइए, इसी धुन को बढ़ाइए, दुनिया को इस मस्ती में डुबो दीजिए। अपना कार्य बढ़ेगा, भारतीय मजदूर संघ सदा के लिए अमर रहेगा। □

४

गन्तव्य

बच्चों की कहानियों की एक पुस्तक है जिसका नाम है 'एलिस इन वण्डर लैण्ड'। एलिस एक बच्ची का नाम है। उसमें एक प्रसंग ऐसा बताया है कि यह बच्ची अपनी माँ के साथ मार्केट में जाती है और भीड़-भड़क्के में वह माँ से बिछुड़ जाती है। भीड़ में वह माँ को इधर-उधर देखती है। देखते-देखते रास्ता काटते-काटते थोड़े खुले रास्ते पर आ जाती है। बहुत घबड़ा गई है कि अब किससे पूछूं कि मैं कैसे घर पहुँच सकती हूँ। इतने में उधर से एक बिल्ली आ गई। अपने सार्वजनिक जीवन में तो मनुष्य मनुष्य के साथ भी बात करने से इन्कार कर देता है, लेकिन बच्चों की कहानियों में मनुष्य और पशुओं की भी बातचीत होती है। वह बच्ची बिल्ली से पूछती है कि "बिल्ली मौसी, मैं माँ से बिछुड़ गई हूँ। मुझे यह बताओ कि मेरे घर का रास्ता कौन-सा है?" बिल्ली मौसी गौर से उसकी तरफ देखती है और कहती

है कि "तुम यह तो बताओ कि तुम्हारा घर का ठिकाना कहाँ है, पता क्या है ? तभी तो मैं बता सकूँगी कि रास्ता कौन-सा है ?" वह बच्ची कहती है कि "यही तो गड़बड़ है । मैं घर का पता-ठिकाना नहीं जानती ।" बिल्ली मौसी कहती है कि "यदि तुम यह नहीं जानती कि कहाँ पहुँचना है तो वहाँ का रास्ता मैं तुमको कैसे बता सकती हूँ !"

गन्तव्य की समस्या

यह एक छोटा-सा प्रसंग उस 'एलिस इन वण्डर लैण्ड' में आता है । आज जब हम समाज की तरफ देखते हैं तो ऐसा लगता है कि वही समस्या लोगों के सामने खड़ी है कि जहाँ पहुँचना है, वह ठिकाना मालूम नहीं है । इसलिए यह भी नहीं कहा जा सकता कि कोई गुमराह हो गया है, गलत रास्ते पर जा रहा है । जिसका ठिकाना और गन्तव्य स्थान निश्चित हो उसके बारे में तो कह सकते हैं कि गन्तव्य स्थान की ओर जाने वाला वह रास्ता है, तुम इधर से जा रहे हो तो गुमराह हो गए हो । जैसे बम्बई बन्दरगाह से कोई जहाज निकलता है तो यदि उसको यह आदेश नहीं दिया गया कि उसे कहाँ पहुँचना है, केवल कहा गया कि आगे बढ़ो तो वह किसी भी दिशा में जाएगा, फिर चाहे वह टोकियो की तरफ जाये, लन्दन की तरफ जाये या वाशिंगटन की तरफ । क्योंकि उसका कोई अन्तिम गन्तव्य स्थान (Destination) बताया ही नहीं गया है । अन्धेरे कमरे में कोई कहे कि निशाना लगाओ तो कोई कहाँ और कैसे निशाना लगाएगा ? जहाँ फायरिंग की प्रैक्टिस होती है वहाँ आपका निशाना ठीक है या नहीं, यह दिखाने के लिए 'बुलस आई' लगाते हैं और जब फायरिंग करते हैं तो गोली 'बुलस आई' के बराबर बीच में जाती है तो शत-प्रतिशत अंक मिलते हैं और जितनी गोली इधर-उधर जाती है, उतने अंक कट जाते हैं । किन्तु जब अन्धेरे में आपको गोली चलाने के लिए कहा जायेगा तो आप कहीं भी गोली चलाएँगे क्योंकि वहाँ 'बुलस आई' तो है नहीं । गोली कहाँ लगनी चाहिए जब वह ठिकाना ही नहीं है, तो जहाँ कहीं गोली लग जायेगी वही सही ठिकाना होगा । इसी प्रकार आज अपने देश में किसी के बारे में यह भी कहना कठिन है कि वह गुमराह हो गया है, उसका निशाना गलत है । क्योंकि अपने अन्तिम गन्तव्य का पता किसी के पास नहीं है । दौड़-धूप चल रही है । कहाँ

जाना है, यह पता नहीं है। कुछ लोगों की अवस्था ऐसी है।

मनुष्य के जीवन का अन्तिम गन्तव्य स्थान क्या हो, इस दृष्टि से उसकी प्रेरणा क्या हो, इस विषय में श्रेष्ठ लोगों ने जो विचार बताए हैं वे अलग-अलग हैं किन्तु उन्हें प्रमुख रूप से दो हिस्सों में बाँटा जा सकता है। एक विशुद्ध भौतिकतावादी (Materialistic) और दूसरा अभौतिकतावादी (Non-materialistic)। मैं 'आध्यात्मिक' (Spiritualistic) शब्द का प्रयोग नहीं कर रहा हूँ क्योंकि जो लोग भौतिकतावादी नहीं, वे सारे आध्यात्मिक होंगे, ऐसा नहीं है। बड़े लोगों द्वारा दिए गए ये विचार बड़े-बड़े शब्दों में रखे गए। सामान्य आदमी के मन में यह विचार नहीं आते, ऐसा नहीं है। यह कहा जा सकता है कि वह बड़े शब्दों और दार्शनिक शब्दावली (Philosophical terminology) में अपना विचार नहीं रख सकते। लेकिन विचार तो समान हो ही सकते हैं, अभिव्यक्ति समान भले ही न हो।

स्वार्थाधिष्ठित प्रेरणा

जैसे मुझे अपने बचपन का स्मरण होता है। मेरे पिताजी अकेले ही थे। उनके कोई भाई वगैरह नहीं थे। लेकिन उनके चाचा के तीन लड़के थे। वे उनके चचेरे भाई थे, यानी मेरे तीन चाचा थे। हमारे पिताजी के चाचाजी की पत्नी यानी हमारी दादी थीं। बचपन में समझता तो कुछ भी नहीं था। फिर भी हमको कभी-कभी लगता था कि दादी का व्यवहार ठीक नहीं है। ऐसा क्यों लगता था ? बचपन में इतना आदमी सोच नहीं सकता। लेकिन जब मैं कॉलेज में आया, थोड़ा-सा अर्थशास्त्र पढ़ा, यद्यपि वह मेरा विषय नहीं था, तो मुझे एक आश्चर्यजनक तथ्य ध्यान में आया कि पूँजीवाद के प्रथम पुरस्कर्ता एडम स्मिथ, जिन्होंने 'वेल्थ ऑफ नेशन' किताब लिखी है, जो कैपिटलिज्म की बाइबल मानी जाती है, उनके विचारों और हमारी दादी के विचारों में पूर्ण साम्य है। आश्चर्य लगा कि इन्होंने अर्थशास्त्र तो पढ़ा नहीं लेकिन विचारों में इतनी समानता कैसे आ गई। दोनों के विचार क्या थे ? वह विचार यह है कि मनुष्य की प्रेरणा केवल व्यक्तिगत स्वार्थ ही हुआ करता है, इसके अलावा कुछ नहीं। क्योंकि मनुष्य व्यक्तिगत सुख चाहता है, इसलिए सुख प्राप्ति के लिए स्वार्थ सिद्धि होनी चाहिए और फिर स्वार्थ सिद्धि के लिए वह सारे

प्रयास करता है। इस प्रकार के प्रयत्न से उसकी सम्पत्ति बढ़ेगी और हरएक की सम्पत्ति बढ़ेगी तो उसका जो कुल योग होगा उसमें राष्ट्र की भी सम्पत्ति बढ़ेगी। इसमें राष्ट्र का भी साम्पत्तिक विकास होगा, यह एक अतिरिक्त बात है जो एडम स्मिथ ने कही थी। केवल यह बात हमारी दादी के ख्याल में नहीं थी। लेकिन बाकी का जो मूल विचार है उसे दोनों मानते थे कि मनुष्य की प्रेरणा व्यक्तिगत स्वार्थ है।

पक्षपाती व्यवहार

मैं जैसे-जैसे बड़ा होने लगा तो ख्याल में आने लगा कि परिवार में क्या होता है, क्या नहीं ? दादी का व्यवहार अति स्वार्थी था। हमारे दादा जरा उदार थे। वह दौरा किया करते थे। दौरे में एक जगह उन्होंने एक लड़का देखा। वह अच्छा था, प्रतिभावान था, लेकिन गरीब परिवार का था। दादा को लगा कि इस लड़के को अपने पास रख लेना चाहिए। उसको कम से कम मैट्रिकुलेशन तक तो पढ़ाना ही चाहिए। अपने तीन बच्चे हैं। इसमें एक और का पेट पालना कोई कठिन बात नहीं है। इसलिए उस लड़के को ले आए, घर में रख लिया। दादी को अच्छा नहीं लगा। मन ही मन कहती रहीं कि काहे के लिए बला ले आए, यह कौन हमारे खून-खानदान का है। काहे के लिए इस पर खर्चा करना। लेकिन दादा के सामने वह कुछ बोल नहीं सकती थीं। परन्तु दिन-प्रतिदिन का उनका व्यवहार ऐसा होता था कि हर चीज में पक्षपात करतीं। जैसे भोजन परोसना है और चारों बच्चे एक पंक्ति में बैठने हैं तो वह क्या करतीं कि उस बच्चे को आखिर में बैठातीं। जब लड्डू परोसतीं तो एक-एक लड्डू देते हुए चौथे तक जातीं, फिर वापस आते समय एक-एक लड्डू सबको और परोसती आतीं। इस प्रकार उस बच्चे को एक ही लड्डू मिलता। एकदम बाहर से देखें तो यह ख्याल में नहीं आता कि पक्ष-पात हो रहा है। लेकिन इधर से जातीं तो एक-एक लड्डू हर एक को मिलता। उधर से वापस आते समय उसे छोड़कर एक-एक लड्डू सबको मिलता और उस बेचारे को केवल एक। लड़का जब छोटा था तब उसके ख्याल में नहीं आता था कि पक्षपात हो रहा है। दादा बाजार से घर में कोई खाने की चीज लाते तो वह उसे रख देती और

फिर बच्चों को एक-एक करके कान में बताती कि, "मैं उसको अभी सौदा लाने के लिए बाजार भेजती हूँ, तब तक तुम खाकर मुँह वगैरह साफ करके ऐसे तैयार होना कि उसको दिखना नहीं चाहिए।" माने इस तरह से स्वार्थ, हर चीज में स्वार्थ, आप इसकी कल्पना कर सकते हैं। ऐसा उनका व्यवहार था। हमारी माताजी को वह कहती थीं कि वह बड़ी भोलीभाली है। उसको कुछ समझता नहीं है, अव्यावहारिक है, वगैरह-वगैरह। खैर, हमको भी उस समय न अर्थशास्त्र समझ में आता था, न कभी हमने मनोविज्ञान ही पढ़ा। यद्यपि ज्यादा समझता नहीं था लेकिन देखता तो था ही कि क्या-क्या चल रहा है।

अति स्वार्थ का दुष्परिणाम

उसी अति स्वार्थी वायुमण्डल और संस्कारों में हमारे तीनों चाचा बढ़े। आखिर में हमने जो हालत देखी वह बड़ी विचित्र थी। तीनों की शादियाँ हुईं। फिर हमारे दादा की मृत्यु हुई और मृत्यु के पश्चात् तीनों ने अलग-अलग मकान भी बना लिए। दादा छोटे से किराये के मकान में रहते थे। जब उसे छोड़ने की बारी आई, तो किसके साथ दादी रहेगी, इस सवाल पर सभी कतराने लगे। किसी ने कहा, मेरा घर छोटा है। किसी ने कहा, मेरी पत्नी की तबीयत हमेशा खराब रहती है। किसी ने कुछ और कहा। माने हर लड़का टालने लगा और जब किसी के यहाँ जबर्दस्ती से वह रहती भी थीं तो बहू उनको कोसती थी। बहू ने कोसा और उन्होंने शिकायत की तो लड़का सुनता भी नहीं था, बल्कि उसी को डाँट देता था कि "वह घर का सब काम देख रही है, जैसा कहती है वैसा ही करो। अब बुढ़ापे में किसलिए झगड़ा कर रही हो?" उसकी जिन्दगी इतनी खराब हो गई, बुढ़ापा इतना खराब हो गया कि लाचारी, दुःख और अपमान बर्दाश्त करते हुए उसको बचा हुआ सारा जीवन बिताना पड़ा। मैं माताजी को कहता था कि, "हमारे ये चाचा कैसा व्यवहार करते हैं। सभी अपनी पत्नी के बस में चले गए, अपनी माताजी की फिक्र नहीं करते।" इस पर माताजी ने कहा कि, "बच्चों का कोई दोष नहीं है। बचपन से अति स्वार्थ के जो संस्कार तुम्हारी दादी ने डाले थे, उसी का यह परिणाम है कि बड़ा होने के बाद वह अतिस्वार्थ अब उसी के खिलाफ, अपनी माँ के खिलाफ, दिमाग में ला रहे हैं। तुम्हारी दादी का ही

दोष है, तुम्हारे चाचाओं का कोई दोष नहीं है।" यह अति स्वार्थ वाली जो बात है वह तात्कालिक रूप से शायद सुखद मालूम होती हो। उसका परिणाम क्या होगा, यह उस समय ख्याल में नहीं आता है, लेकिन उसके अन्तिम परिणाम से आदमी बच नहीं सकता।

अमरीकी समाज का चित्र

मैं अमरीका गया था। उस समय संघ के तीन स्वयंसेवकों ने अपना एक अनुभव बताया कि एक बार वे जानकारी प्राप्त करने की इच्छा से उत्सुकतावश एक वृद्धाश्रम देखने के लिए गए। वहाँ काफी वृद्ध लोग थे। वे सब श्रीमान थे—लखपति, करोड़पति लोग थे। उन्होंने उनका हृदय से स्वागत किया, उनके साथ गपशप की और एक घण्टे के बाद जब वापस आने के लिए निकले तो वास्तव में कई लोग आँसू बहाने लगे कि आप दोबारा जरूर आइए। अगले इतवार को भी आइए। उनको आश्चर्य हुआ। उन्होंने पूछा, "क्यों ? आप ऐसा क्यों कह रहे हैं ?" उत्तर मिला, "हमको मिलने के लिए कौन आता है ! आप आये, हमें बहुत अच्छा लगा।" यह दशा लखपतियों-करोड़पतियों की थी। उन्होंने बताया कि, "हमारे लड़के तो हमको मिलने के लिए कभी आते ही नहीं। हमारी जो स्टेट है, जो बैंक बैलेंस है उसमें से सारा पैसा हम लेते हैं। बच्चे बड़े हो गए हैं। वह अपना-अपना परिवार देख रहे हैं। कोई हमारी फिक्र नहीं कर रहा है। दो-चार साल में समय मिलता है तो एकाध बार आते-जाते हैं, नहीं तो क्रिसमस के समय फूलों का गुच्छा भेज देते हैं। इसके अलावा उनको हमारी कभी याद नहीं आती।"

मैंने उन स्वयंसेवकों से पूछा कि, "ऐसा कैसे होता है ?" तो उन्होंने बताया कि अमरीका प्रगतिशील (प्रोग्रेसिव) है। यहाँ के लोग परिवार, परिवार के प्रति कर्तव्य वगैरह, इन सब बातों को दकियानूसी मानते हैं। यहाँ के लोग प्रोग्रेसिव, एडवांस्ड और रेडिकल हैं। वे अपना सुख जानते हैं। इसका कारण यह है कि शादी के बाद वैवाहिक जीवन का प्रथम चरण तो इन लोगों को आनन्दमय लगता है, लेकिन बच्चा होने के बाद माँ और बाप दोनों को लगता है कि यह तो हमारे लिए बाधा के रूप में है। उस बच्चे को जब बाधा के रूप में देखते हैं तो छोटा होते हुए भी बच्चे को इतना तो अनुभव होने ही

लगता है कि मुझे लोग चाहते नहीं हैं (I am unwanted)। बच्चा जब थोड़ा और बड़ा होता है तो उस समय भी उनका व्यवहार परायेपन का ही रहता है। तब बच्चे के मन में उनसे दूर होने की स्वाभाविक इच्छा उत्पन्न होती है। वह सोचने लगता है कि अपने पैरों पर खड़े होना चाहिए। अतः नौ-दस साल का होते ही वह धीरे-धीरे काम शुरू कर देता है। अमरीका में छोटे काम के लिए एक घण्टे में तीन डालर मिलते हैं। किसी की कार साफ कर देना, किसी का गिलास साफ कर देना, किसी के यहाँ झाड़ू लगाना—ऐसे छोटे-छोटे काम वह बच्चा नौ-दस साल की आयु में ही शुरू कर देता है। और जैसे-जैसे वह अपने पैरों पर खड़ा होता जाता है वैसे-वैसे अपने परिवार से अलग होता जाता है। शादी करके माँ-बाप से छुट्टी ले लेता है और फिर उनका मुँह नहीं देखता। केवल मृत्यु के बाद वसीयत के बारे में झगड़ा करने के लिए आता है। जासूसी उपन्यास लिखने के लिए प्रसिद्ध अमरीकी उपन्यासकार अगोला क्रिस्टी ने अमरीकी जीवन के बारे में एक बड़ा अच्छा वाक्य दिया है। वह वाक्य अंग्रेजी के इस वाक्य "ह्वेयर देयर इज ए विल, देयर इज ए वे" (जहाँ चाह वहाँ राह) के समानान्तर है। अगोला क्रिस्टी का वाक्य है, "ह्वेयर देयर इज ए विल, देयर इज ए मर्डर"(जहाँ वसीयत है वहाँ हत्या है)। जहाँ-जहाँ वसीयत है, वहाँ-वहाँ हत्या अवश्य होती है। खैर, तो वह केवल वसीयत के बारे में झगड़ा करने के लिए आता है, बीच में नहीं आता। जब ये बूढ़े हो जाते हैं और कुछ दिनों के बाद जवानी ढल जाती है, फिर उन्हें लगता है कि वे बूढ़े हो गए हैं अब किसी को उनकी फिक्र करनी चाहिए। बच्चों को चाहिए कि उनकी फिक्र करें। पर उस समय उनको पता चलता है कि हमने तात्कालिक सुख के पीछे लगते हुए छोटी उम्र में अपने बच्चों के साथ जो व्यवहार किया उसके कारण ही उनके बच्चों के मन में उनके प्रति अरुचि उत्पन्न हुई है और अब उनके पास उनका मुँह देखने तक के लिए समय नहीं है।

उनकी उस मनोदशा में जब संघ के वे तीन स्वयंसेवक उनसे मिलने गए तो वे बड़े-बड़े करोड़पति लोग उनसे प्रेम से मिले और शिकायत की कि उनके पास वहाँ प्रेम से बात करने के लिए कोई भी नहीं आता। यहाँ सारी सुख-सुविधाएँ हैं, असुविधा कुछ भी नहीं है, लेकिन प्रेम से बात करने कोई नहीं आता। इससे हम यह अनुमान

लगा सकते हैं कि वास्तव में स्वार्थ क्या है ? क्या इसकी कल्पना सामान्य व्यक्ति कर सकता है ?

सुख क्या है ?

सुख क्या है ? इसकी भी वास्तविक कल्पना सामान्य व्यक्ति कर सकता है या नहीं कर सकता, यह एक प्रश्न अपने मन में निर्माण होता है। सुख चाहिए, यह बात ठीक है। केवल पाश्चात्य लोगों ने ही नहीं, हमारे द्रष्टाओं, ऋषियों और मुनियों ने भी यह कहा है कि सम्पूर्ण जीवन का लक्ष्य सुख है। इसमें कोई शक नहीं है। वह सुख कैसे प्राप्त हो, इसी के बारे में सारे जीवन का तत्त्वज्ञान है।

जीवन को टुकड़ों-टुकड़ों में नहीं बाँटा जा सकता। जीवन एक ही है। उसको देखने के अलग-अलग पहलू हैं। एक पहलू को व्यावहारिक और दूसरे को सैद्धान्तिक कहते हैं। कुछ लोग कहते हैं कि सैद्धान्तिक दृष्टि से तो आप ठीक हैं, लेकिन व्यावहारिक रूप से दुनिया में यह नहीं चलता। किन्तु यह सच नहीं है। अपने यहाँ सुख-दुःख की बड़ी सरल परिभाषा की गई है।

अनुकूल संवेदनात्मकम् सुखम्, प्रतिकूल संवेदनात्मकम् दुखम् ।

अर्थात् जिसके कारण अनुकूल संवेदना होती हो वह सुख और प्रतिकूल संवेदना होती हो वह दुःख है। यह इतनी सरल परिभाषा है कि बुद्धिहीन प्राणी भी हमको समझ सकते हैं। आपने भूगोल में पढ़ा होगा कि ठण्डे प्रदेशों, उत्तर साइबेरिया वगैरह में जब बहुत ठण्ड हो जाती है तो वहाँ के पशु-पक्षी भी उस अति ठण्डे प्रदेश से गर्म प्रदेश में आ जाते हैं और जब वहाँ बहुत गर्मी हो जाती है तो वहाँ से वे कुछ कम गर्म प्रदेशों में चले जाते हैं। माने पक्षियों तक को भी इतना पता है कि जहाँ प्रतिकूल संवेदना है वहाँ से अनुकूल संवेदना की तरफ जाना चाहिए। हम पशु-पक्षी की तरह प्राणी नहीं हैं। हमारे पास बुद्धि है और इसलिए सुख प्राप्त करना है तो उसकी वैविध्य (Variety), प्रकार (Type), घनत्व (Intensity) और स्थायित्व (Durability) क्या रहे, इसका भी हमें विचार करना पड़ेगा।

तात्कालिक सुख

हमारे एक नेता मित्र हैं। उनको मधुमेह है। डाक्टर ने मना किया है कि कोई मीठी चीज नहीं खाना, लेकिन उनको मिठाई का

बड़ा शौक है। एक बार दौरे में कुछ दिन हम उनके साथ थे। हमने उनका मजा देखा। जब किसी स्टेशन पर कोई मिठाई का पैकेट लेकर आता था तो ये एकदम गुस्सा हो जाते थे कि यह क्या बात है? बदतमीज हो, पता नहीं तुमको, मुझे डायबिटीज है, तुम मुझे मारना चाहते हो। किन्तु उनके अनुयायी उनको वर्षों से जानते हैं। वे गालियाँ सुन लेते थे। फिर जैसे ही बोलना बन्द होता था, वे कहते थे कि नहीं नेताजी, ऐसी बात नहीं है। बरफी की यह वैरायटी बिल्कुल नयी है। इसलिए लाया हूँ। यह सुनकर वे कहते थे कि ऐसा है तो फिर आने दो। आने दो माने पूरी ही आने दो। एक बार हमारे साथ वे भोजन के लिए बैठे। साथ में एक तीसरे मित्र भी थे। खीर परोसी जा रही थी। उनके पास बैठे सज्जन ने अपनी कढ़ी वाली कटोरी भी खाली करके दो कटोरी खीर ले ली। लेकिन जैसे ही परोसने वाली महिला एक कदम आगे बढ़ी तो नेता जी के पात्र के ऊपर उन्होंने हाथ कर दिया और कहा कि "नहीं-नहीं, इनको मत परोसो, इनको डाय-बिटीज है।" नेताजी उसकी तरफ देखने लगे। दूसरी बार भी वैसा ही हुआ। लेकिन तीसरी बार उसने जैसे ही उनकी कटोरी पर हाथ किया उन्होंने एकदम उसका हाथ ऊपर झटक दिया और कहा कि, "मिस्टर, डायबिटीज तुमको है या मुझको है? तुम क्यों मना कर रहे हो?" और फिर उस महिला का नाम लेकर कहा कि "स्वाभाविक रूप से इस कटोरी में जितनी खीर आ सकती है उतनी खीर आने दो।"

हमने उनका दूसरा भी हाल देखा। मिठाई खाते समय तो उन्हें बड़ा आनन्द आता था। फिर शूगर बढ़ जाती थी और तुरन्त इंसूलिन का इंजेक्शन लेना पड़ता था। उस समय मुँह टेढ़ा-मेढ़ा हो जाता था। वह इतनी नाजुक तबीयत के थे कि उनको इंजेक्शन वगैरह भी बर्दाश्त नहीं होता था। और फिर जब मुँह टेढ़ा-मेढ़ा हो जाता था तो कहते थे कि "क्या है, कैसे मूर्ख हैं लोग, मुझे इस आफत में डाला।" जैसे उन्होंने मिठाई दूसरों के लिए खाई हो। सुबह रसगुल्ला खा लिया और बड़ा आनन्द हुआ लेकिन जब इंसूलिन का इंजेक्शन लिया तो टेढ़ा-मेढ़ा मुँह कर लिया। क्या इसको सुख कहा जाय? यह तो तात्कालिक सुख है। क्या इसे हम वांछनीय सुख कह सकते हैं?

वास्तव में वांछनीय सुख तो वह होता है जो अखण्ड टिकने वाला हो, जो घनीभूत हो, जो निरन्तर हो। ऐसा नहीं कि दस बजे सुख,

सवा दस बजे दुःख, फिर साढ़े दस बजे सुख। आने-जाने वाला सुख नहीं चाहिए। ऐसा सुख वांछनीय नहीं हो सकता। क्योंकि प्राणियों से मनुष्य को ज्यादा बुद्धि दी गई है, इसलिए मनुष्य का यह कर्तव्य है कि वह यह विचार करे कि मेरा सुख किस बात में है। सुख ही गन्तव्य स्थान है। हमारे द्रष्टाओं ने बगैर हिचक स्पष्ट शब्दों में कहा है कि सुख ही मनुष्य जीवन का अन्तिम लक्ष्य है। लेकिन उन्होंने कहा सुख क्या है, यह पहचानो। सुख किसमें है यह जानो।

ऐसा कहा जाता है कि आजकल लोगों के पास सोचने के लिए समय नहीं है। एक पाश्चात्य लेखक का कहना है कि "लोगों के पास जीने का समय नहीं है, क्योंकि उन्हें हमेशा काम करना पड़ता है।" जैसे नेताओं के बारे में किसी ने कहा कि नेताजी कहते हैं कि "मेरे पास सोचने का समय नहीं, क्योंकि मुझे हमेशा बोलना पड़ता है।" वैसे ही सर्वसाधारण मनुष्य के विषय में भी है कि "उसके पास जीने के लिए कोई समय नहीं क्योंकि उसे हमेशा काम करना पड़ता है।" इस तरह अन्य प्राणियों की तरह मनुष्य भी तात्कालिक सुख का ही विचार करता है। किन्तु उससे वास्तविक वांछनीय सुख प्राप्त होगा या नहीं होगा, इसका विचार नहीं करता।

तात्कालिक सुख क्या है ? इस विषय में कहा गया है कि आहार, निद्रा, भय, मैथुन—सभी के लिए समान हैं। अर्थ और काम सभी के लिए समान और सामान्य है। इसके कारण सुख का अनुभव होता है। इस बात पर दो मत नहीं हैं कि इनके अभाव में भी दुःख है। हमारे शास्त्रों में यह कहा गया कि अर्थ और काम का अभाव नहीं होना चाहिए। इसका अभाव होने से मनुष्य दुखी होता है। अर्थ के विषय में यह कहा गया है कि "भूखे भजन न होत गोपाला।" जो आदमी भूखा है वह गोपाल का भजन क्या करेगा ? समर्थ रामदास ने कहा, "तुम्हारे पास पैसा ही नहीं तो खाओगे क्या ? परिवार का पेट कैसे भरोगे और परिवार की चिन्ता में ही यदि तुम्हारा सारा समय बीत जाता है तो परमार्थ और भगवान का चिन्तन कब करोगे ?"

काम

जिस प्रकार अर्थ का पूर्ण अभाव रहने से नहीं चल सकता, उसी प्रकार काम का पूर्ण अभाव रहने से भी नहीं चल सकता। हमारे

यहाँ काम को बहुत ही उच्च स्थान दिया गया है। लेकिन काम की हिन्दू अवधारणा सिगमन फ्रायड के काम की अवधारणा से भिन्न है। सिगमन फ्रायड का 'लिबिडो' एक अलग चीज है। हमारे द्रष्टाओं ने कहा है कि इस सारी सृष्टि का निर्माण काम के कारण हुआ है। कहते हैं कि पहले वह अकेला था। आप उसका कुछ भी नाम रख लीजिए। वह अकेला था। लेकिन वह अकेला था तो यह सारा संसार कैसे निर्माण हुआ ? उत्तर मिला, **'सहकाम्यक एकोऽहम् बहुष्यामि'**। उसके मन में काम निर्माण हुआ कि मैं अकेला हूँ, मैं एक से अनेक बन जाऊँ। मनुष्य को जब लीला करने की इच्छा होती है, मनोरंजन करना होता है तो दूसरे की आवश्यकता महसूस होती है। इस दृष्टि से वह जो अकेला था **'एकमेवाद्वितीय'**, उसके मन में इच्छा हुई तो कहा—**'सहकाम्यक'**। उसके मन में कामना निर्माण हुई। वह कामना थी, **'एकोऽहम् बहुष्यामि'**—मैं अकेला हूँ, मैं अनेक बन जाऊँ, तो जरा मजा आएगा। तब लीला कर सकूँगा। सर्वसाधारण व्यवहार में भी भगवान ने कहा कि—

धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ। (गीता ७।११)

अर्थात् "काम मैं स्वयं हूँ"। इससे उच्च स्तर पश्चिमी मनोविज्ञान या सायकेटिस्ट क्या दे सकते हैं ? भगवान ने कहा कि "मैं स्वयं काम हूँ"। लेकिन कैसा ? **'धर्माविरुद्धो'**, जो धर्म से अविरुद्ध है। माने काम हैं। 'काम' के अभाव से भी काम नहीं चलता। लेकिन उसमें कुछ सीमा, कुछ शर्त और कुछ सुधार भी दिए हैं। कुल मिलाकर जिसका नाम 'धर्म' है। यह कहा कि इस धर्म से अविरुद्ध जो 'काम' है वह मैं हूँ। गीता में ही यहाँ तक कहा कि—

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः॥ (गीता ३।४२)

बुद्धि के जो ऊपर है वह 'सः' है। 'सः' याने क्या है ? हमारे एक आचार्य ने बताया कि 'सः' माने 'भगवान'। लेकिन हमारे एक दूसरे आचार्य ने कहा कि यहाँ 'सः' माने 'भगवान' कहाँ से आया ? ऊपर के जो सारे श्लोक हैं वे तो काम विकार के बारे में हैं। तो साधारण तौर से यहाँ इसका अर्थ 'काम विकार' करना चाहिए। बुद्धि की अवधान (Sub-conscious mind) और अनवधान (Un-conscious mind) स्थिति को 'सः' कहा गया, यही काम है। यद्यपि

यह भाष्य सर्वमान्य नहीं है। लेकिन इतना सर्वमान्य है कि इसके अभाव में काम नहीं चलेगा। यदि अर्थ के अभाव से मनुष्य दुखी होता है, तो काम के अभाव से भी मनुष्य सुखी नहीं हो सकता।

किन्तु अर्थ और काम की पूर्ति किस ढंग से होनी चाहिए, इसका भी विवेचन हमारे ऋषियों ने किया है। कुछ सामान्य स्तर रखा है कि इसका अभाव न हो लेकिन कुछ 'सीलिंग' (सीमा) भी रखी है कि इससे अधिक भी नहीं होना चाहिए। वह सीमा यह रखी कि अर्थ और काम का अभाव तो नहीं होना चाहिए, लेकिन मनुष्य का मन अर्थ और काम के प्रभाव में भी नहीं रहना चाहिए। क्योंकि यह दिखाई देता है कि अर्थ के अभाव के कारण जैसे मनुष्य दुखी होता है, वह चिन्तित दिखाई देता है, वैसे ही अर्थ के प्रभाव के कारण भी मनुष्य दुखी होता है। यह बात अनुभव के आधार पर लोग बता सकते हैं। सामान्य रूप से ऐसा सोचा जाता है कि कामविकार की पूर्ति से आनन्द होता है। हमारे मुनियों, ऋषियों ने यह तो कहा है कि एकदम अभाव दुःख का कारण है। किन्तु काम के प्रभाव में रहते हुए मनुष्य सुखी हुआ, ऐसे कितने उदाहरण दुनिया में हैं? इसका क्या हमने कभी विचार किया है? काम की पूर्ति होनी चाहिए, यह बात सही है; लेकिन पूर्ति करना एक बात है, उसके प्रभाव में रहना सर्वथा अलग बात है। केवल काम की ही पूर्ति करते रहने से मनुष्य सुखी होगा यह समझना भी भिन्न बात है। इस दृष्टि से हम देखें कि जो केवल काम के प्रभाव में रहते हैं वे सुखी होते हैं क्या? एक भी उदाहरण हमें ऐसा मिलता है क्या? अच्छे-अच्छे लोगों ने जो अपने अनुभव लिख कर रखे हैं, उनको यदि हम देखें तो ऐसा लगता है कि विशुद्ध कामी पुरुष होते हुए भी अन्त में वे दुखी हुए।

उमर खय्याम का नाम सबने पढ़ा होगा। वास्तव में उमर खय्याम ने जो रुबाइयाँ लिखी हैं वह ओछी नहीं हैं, उसमें बहुत दार्शनिक तत्त्व है। उसकी रुबाइयों की यह विशेषता है कि अनपढ़ व्यक्ति और अच्छे-अच्छे दार्शनिक भी उसे बड़े चाव से गाते एवं पढ़ते हैं। लेकिन दार्शनिक उसमें दर्शन देखते हैं और दूसरे आदमी उसमें रोमांस देखते हैं। यह माना जाता है कि खय्याम केवल उपभोग के पीछे था। किन्तु उपभोग लेते-लेते वह कहता है कि जैसे गुलाब सूख जाता है, गुलाब के साथ वसन्त ऋतु भी सूख जाती है। बहुत दुःख की बात है कि

यौवन की सुगन्ध ग्रन्थि समाप्त हो जाती है और इस लताकुञ्ज में बुलबुल कहाँ से आई और कहाँ निकल जाती है, कुछ पता नहीं चलता है।" इसलिए वह अपनी साकी से कहता है कि "मेरे शराब का प्याला जरा भर दो क्योंकि इसके कारण भूतकाल के दुःख और भविष्यकाल की चिन्ताओं को मैं भूल सकता हूँ।" यह प्याला भर दो। न भविष्य का विचार करना है, न भूत का। केवल उपभोग का विचार करना है। ऐसा तत्त्वज्ञान उन्होंने बताया और साकी को कहा कि "आध्यात्मिक चर्चा बुद्धिमान लोगों को करने दो। एक बात निश्चित है कि जीवन बह रहा है, तेजी से हाथ से निकला जा रहा है। गुलाब का फूल एक ही बार खिलता है और फिर वह हमेशा के लिए खत्म हो जाता है। बस यही सत्य है। बाकी जो बुद्धिमान लोग सिद्धान्त वगैरह की चर्चा कर रहे हैं, यह सब फिजूल बातें हैं।"

यह एक विचार हो सकता है, जँचने वाला विचार हो सकता है। जिसको ज्यादा सोचना ही नहीं, उसके लिए तो यह बहुत प्रभावित करने वाला विचार है। लेकिन हम यह देखें कि केवल भोग के प्रभाव में सारा जीवन बिताने वाले लोग क्या सुखी हो सके ? पाश्चिमात्य जगत में एक बड़ा श्रेष्ठ नाम आता है केसानोहा का। वह अभी सौ-सवा सौ साल के पहले हुआ था। वह इतना यशस्वी किन्तु उपभोगी पुरुष था कि उसका नाम कामपूर्ति का प्रतीक बन गया है। लेकिन उसका जीवन दृष्टान्त यह नहीं बताता कि सारे यूरोप को अपने उपभोग का विषय बनाने के बाद भी काम-विकार के अन्त में वह सुखी हुआ। हमारे यहाँ ययाति इसके उदाहरण हैं। यह ठीक है कि यह उदाहरण पुरातनकाल का है लेकिन यह एक ऐसा उदाहरण है कि सारा जीवन उसने कामपूर्ति में बिताया। बिल्कुल बूढ़ा हो गया तो भी काम-विकार की शान्ति नहीं हुई। क्योंकि हमारे यहाँ कहा गया है कि **"न जातु कामः कामानाम् उपभोगेन शाम्यते, हविशा कृष्ण वर्तते।"** अर्थात् उपभोग से काम शान्त नहीं होता। जिस प्रकार अग्नि में घी डालने से अग्नि शान्त नहीं होती, और अधिक प्रज्वलित होती है, वैसे ही उपभोग के कारण इच्छाएँ और प्रबल होती हैं। ययाति ने सारा जीवन इस तरह से बिताया कि अन्त तक काम की शान्ति नहीं हुई। सुन्दर शर्मिष्ठा को देखा तो सोचा कि इसका तो उपभोग करना ही चाहिए। लेकिन बेचारे बूढ़े हो गए थे। प्रकृति की रचना ही ऐसी है

कि एक तरफ काम इच्छा बढ़ती जाती है तो दूसरी तरफ शारीरिक शिथिलता बढ़ती जाती है। कहते हैं कि उसने अपने लड़के को बुलाया और पूछा कि "तुम पितृभक्त हो ?" वह बोला, "हाँ, मैं पितृभक्त हूँ।" वे बोले, यदि वास्तव में तुम पितृभक्त हो तो तुम अपना यौवन मुझे दे दो ताकि मैं शर्मिष्ठा का उपभोग कर सकूं। उस पितृभक्त ने अपनी जवानी पिताजी को दे दी। इस तरह का उदाहरण अपने पुराणों में आता है। सावरकर जी ने कहा है, "सम्पूर्ण जीवन का उसने एक ही खेल बना दिया तो भी उसकी पूर्ति नहीं हुई, उसकी शान्ति नहीं हुई।" पाश्चिमात्य लोग इस विषय में काफी निपुण हैं। वे तरह-तरह के विकार-प्रयोग भी करते हैं। किन्तु अन्त में सुखी हो गए, ऐसा एक भी उदाहरण नहीं है। उल्टे दिखता यह है कि **"तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः"**। इच्छाएँ बढ़ती जा रही हैं किन्तु उपभोग करने की क्षमता कम होती जा रही है। इसी कारण दुखी हैं। पश्चिम का यही अनुभव है।

अर्थ

अर्थ का भी यही हाल है। अर्थार्जन करना चाहिए। यह तो सबकी इच्छा है। क्योंकि ऐसा कहते हैं कि अर्थ से ही सबकुछ प्राप्त होता है। लेकिन जिन्होंने बहुत अर्थार्जन किया, क्या उनको पूरी तरह शान्ति मिली ? मोहम्मद गजनवी का उदाहरण सबके सामने है। उसने लूटमार करके दुनिया भर की सम्पत्ति इकट्ठा करके उसको भण्डार में जमा किया और मृत्यु का क्षण आया तो दुखी हो गया। कहने लगा, "भगवान ! मैंने सारा जीवन कष्ट उठाते हुए अपने पराक्रम से यह सारी सम्पत्ति जुटायी। अब यह सब यहीं छूटी जा रही है। "गजनवी की यह दशा देखकर उसको मृत्यु शय्या पर ही धनागार के पास ले जाया गया। वह आँसू भरी आँखों से उस ओर देखता रहा और उसे देखते-देखते रोते-रोते ही उसकी मृत्यु हो गई। धन यहीं धरा रह गया। सुख मिला नहीं। दुःख भोगते हुए उसका अन्त हुआ। इसके विपरीत भी कुछ उदाहरण हैं। पश्चिम में भी कुछ ऐसे उदाहरण हैं कि अपार सम्पदा एकत्र करने के बाद यह अनुभव में आया कि इससे सुख नहीं मिला तो उन्होंने बड़े-बड़े ट्रस्ट और फाउंडेशन बना दिए। अपने पराक्रम से अपार सम्पत्ति का अर्जन

करने के बाद फाउंडेशन और ट्रस्ट का निर्माण करके जन-कल्याण के काम के लिए अपनी सम्पत्ति अर्पित करते हुए मन की शान्ति प्राप्त करना, इस प्रकार के उदाहरण पश्चिम में बहुत हैं।

रूस के तानाशाह स्टालिन की लड़की श्वेतलाना हिन्दुस्थान आई थी। हम अनुमान लगा सकते हैं कि स्टालिन की लड़की के पास सम्पत्ति और बाकी सब चीजों का क्या अभाव हो सकता है ? यहाँ संवाददाताओं ने जब उससे पूछा कि, "तुम यहाँ क्यों आई हो ? चाहती क्या हो ? तुम्हारी इच्छा क्या है ?" उसने कहा कि "मेरी एक ही इच्छा है कि पवित्र गंगा नदी के किनारे कुटिया बनाकर आराम से अपने जीवन का अन्तिम काल बिता सकूँ।" क्या हमारे देश का प्रोग्रेसिव और रैडिकल आदमी यह कल्पना कर सकता है कि स्टालिन की लड़की यह कहे कि, "मेरी अन्तिम इच्छा है कि मैं गंगा के किनारे कुटिया बनाकर के अपने जीवन का अन्तिम काल बिताऊँ।" अभी-अभी लगभग तीन साल पूर्व विश्व प्रसिद्ध पूँजीपति हेनरी फोर्ड का नाती भारत आया तो उससे भी संवाददाताओं ने पूछा, "आप हरे राम, हरे कृष्ण आन्दोलन के चक्कर में कैसे आ गए ?" वह बोला, "इसी में मुझे शान्ति मिलती है।" फिर दूसरे संवाददाता ने पूछा कि "आपको इसमें शान्ति मिलती है। फ़िर आपके पास जो अकूत सम्पत्ति है, उसका क्या होगा ?" उसने उत्तर दिया, "सम्पत्ति मात्र सम्पत्ति है, यह तो भगवान कृष्ण की है" (Wealth is wealth, it is of Lord Krishna)। हमारे भारत का प्रोग्रेसिव आदमी इसे मूर्खतापूर्ण बात कहेगा। लेकिन हेनरी फोर्ड का नाती यह बात स्पष्ट शब्दों में कहता है। यह विचार करने की बात है कि अमरीका जैसे भौतिक दृष्टि से समृद्ध देश के धनपति का नाती और रूसी तानाशाह स्टालिन की लड़की श्वेतलाना ऐसा क्यों सोचते और कहते हैं। कोई गंगा के किनारे कुटिया में रहकर अपना अन्तकाल बिताना चाहता है तो कोई यह कहता है कि सबकुछ भगवान कृष्ण का है। इस प्रकार की भावना वहाँ क्यों पैदा होती है ?

वास्तव में यह विचार करने की बात है कि अर्थ और काम के पीछे लगने और उससे प्रभावित होने से क्या कोई सुखी हो सकता है ? गोस्वामी तुलसीदास ने बहुत अच्छी उपमा दी थी। उन्होंने कहा कि **"अस प्रिय निशि बीत गयी सब, कबहुँ न नाथ नींद भर आई।"**

अच्छी नींद और सुख से सोने के लिए बिस्तर अच्छा होना चाहिए। किन्तु "कबहुँ न नाथ नींद भर आई।" बिस्तर को अच्छा करते-करते ही रात निकल गयी। सोने का मौका ही नहीं मिला। हम सभी लोग जीवन का विचार करें तो ऐसा दिखाई देता है कि बिस्तर ठीक करते-करते ही जिन्दगी खत्म हो जाती है, सोने का मौका ही नहीं मिलता। मृत्यु के समय ऐसा लगने लगता है कि यह रह गया, वह रह गया और वह हो जाता तो अच्छा होता।

टॉलस्टाय की सुप्रसिद्ध कहानी है 'मनुष्य को कितनी जमीन चाहिए'। राजा ने किसी व्यक्ति से कहा कि तुम जितनी जमीन पर दौड़ोगे उतनी जमीन हम तुमको दे देंगे। वह गरीब आदमी था। उसने सोचा कि सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक जितनी जमीन पर दौड़ूंगा उतनी जमीन उसकी हो जाएगी। अच्छा मौका है। उसने सूर्योदय से ही दौड़ना शुरू किया। हर समय मन में यही विचार रहता था कि एक ही दिन तो दौड़ना है बाद में तो सारी जिन्दगी के लिए यह जमीन उसकी हो जाएगी। सुख से रहेगा। वह आगे औरआगे ही दौड़ता रहा। उसके फेफड़े में तकलीफ होने लगी। शरीर थकने लगा। दम उखड़े लगा। फिर शाम होने लगी तो उसने अपनी गति और तेज कर दी। जब सूर्यास्त दिखाई देने लगा तो सोचा कि अब तो समय बहुत ही कम रह गया है, और तेज दौड़ना चाहिए। वह इतना तेज दौड़ा कि हाँफते-हाँफते दम उखड़ गया और गिरकर खत्म हो गया। टॉलस्टाय ने लिखा है कि उसके समाप्त होने के बाद जब उसको गाड़ने के लिए जमीन की नापजोख की गई तो साढ़े तीन गज जमीन में काम हो गया। टॉलस्टाय ने लिखा है कि मनुष्य को केवल साढ़े तीन गज जमीन चाहिए। लेकिन उसके लिए दौड़ते-दौड़ते उसने अपना सारा जीवन समाप्त कर दिया।

चिरन्तन सुख

केवल अर्थ, काम के प्रभाव से मनुष्य सुखी नहीं हो सकता। इससे दुःख ही बढ़ता है। इस कारण हमारे यहाँ यह कहा गया कि अर्थ, काम का अभाव नहीं होना चाहिए तो अर्थ और काम के प्रभाव में भी नहीं आना चाहिए। तभी मनुष्य सुखी हो सकता है और यह जो सुख रहेगा, वह अखण्ड, चिरन्तन (Eternal), निरन्तर (Uninter-

mitent), घनीभूत (Solidified) रहेगा। वह सुख आने-जाने वाला सुख नहीं होता। इसे ही हमारे द्रष्टाओं ने मोक्ष कहा है। घनीभूत, चिरन्तन, निरन्तर सुख अर्थात् मोक्ष। मनुष्य जीवन का यही लक्ष्य है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए मनुष्य को अपनी रुचि, प्रतिभा, प्रकृति, परिस्थिति, अपने-अपने शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, आध्यात्मिक स्तर आदि सभी बातों का विचार करते हुए मार्ग का निर्धारण करना चाहिए। इस दृष्टि से यह कहा गया है कि समाज-रचना ऐसी हो जिसमें अर्थ और काम का अभाव न हो, लेकिन व्यक्ति की मनोरचना ऐसी होनी चाहिए कि जिस पर अर्थ और काम का प्रभाव भी न हो। अभाव और प्रभाव की दोनों बातों को ठीक से समझना जरूरी है।

अर्थ और काम का किसी को भी अभाव न हो, यह जिम्मेदारी समाज रचना की है। अर्थ और काम का प्रभाव मन पर न हो यह जिम्मेदारी व्यक्ति की मनोरचना की है। इसलिए राष्ट्रीय श्रम आयोग (National labour Commission) के सामने हमने अपना जो मेमोरेंडम दिया उसमें जहाँ बोनस, डी० ए०, पेंशन रूल्स आदि बातें कही हैं वहीं पहले ही पृष्ठ पर यह दिया है **"अभावो वा प्रभावो वा यत्र नास्ते"**। अर्थ और काम का अभाव भी न हो और अर्थ और काम का प्रभाव भी न हो, जब ऐसी अवस्था आती है तो समाज स्वात्म रूप में आ जाता है और फिर धर्मचक्र प्रवर्तन शुरू हो सकता है। अर्थात् उस ज्ञापन में बोनस, डिअरनेस एलाउंस, हड़ताल का अधिकार है तो सबसे पहले यह श्लोक भी है कि—

अभावो वा प्रभावो वा यत्र नास्त्यर्थकामयोः।
समाजे स्वात्मरूपत्वात् धर्मचक्रप्रवर्तनम्॥

इस दृष्टि से हम स्वयं अपने ही जीवन का विचार करें कि सुख क्या है? मैं किस तरह सुखी हो सकता हूँ? जहाँ मैं खड़ा हूँ वहाँ से मोक्ष तक पहुँचने का रास्ता क्या है? अपनी रुचि, प्रकृति, प्रवृत्ति और शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक स्तर का विचार करते हुए इसके विषय में हमें गहन चिन्तन करना चाहिए। □

५

सावधान

जो अच्छे और कर्तृत्ववान कार्यकर्ता होते हैं, संकटकाल और चुनौतियों के समय उनका पराक्रम प्रकट होता है। जब भी बाहर से आवाहन आता है, वे उसका सार्थक प्रत्युत्तर देते हैं। वे रबड़ की गेंद की तरह होते हैं, मिट्टी की गेंद की तरह नहीं। यदि कोई रबड़ की गेंद को जमीन पर पटकता है तो वह पटकने वाले के सिर के ऊपर तक चली जाती है। लेकिन वही यदि मिट्टी की गेंद को जमीन पर पटकता है, तो वह गेंद इतना सख्त रहता है कि जहाँ वह पटका जाता है वहीं या तो पड़ा रह जाता है या टूटकर बिखर जाता है, ऊपर जाने की कोशिश नहीं करता। अच्छा कार्यकर्ता रबड़ की गेंद के समान ऊपर जाता है। चुनौती जितनी बड़ी होती है वह उतना ही ज्यादा काम करता है। जैसा कि शेक्सपियर ने कहा है कि कायर आदमी अपनी मृत्यु के पूर्व अनेक बार मर चुका होता है (Coward

dies many times before his death) किन्तु बहादुर एक ही बार मरता है ।

कायर तो जीवत मरत दिन में बार ही बार ।
प्राण पखेरू वीर के उड़त एक ही बार ॥

जो बहादुर और अच्छा कार्यकर्ता है, जितना गम्भीर संकट होगा उसका पराक्रम और कर्तृत्व भी उतना ही श्रेष्ठ होगा । लेकिन वही कार्यकर्ता सुख के दिन आने पर भी उतना ही काम करेगा, यह गारण्टी नहीं है । व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के इतिहास में ऐसा लिखा है कि जो लोग संकट के समय आगे आकर उसका सामना करते हैं विजय-काल या प्रमादकाल या यश प्राप्त होने पर उनमें थोड़ा 'उपलब्धि का सन्तोष' (Sense of having arrived) आ जाता है तो वे सोचते हैं कि हम अब बन गए, पूर्ण हो गए । इस कारण स्वयं अपने को पता न लगते हुए पहले की लगन धीरे-धीरे समाप्त हो जाती है । इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण मौजूद हैं—राष्ट्र के बारे में भी और व्यक्ति एवं समूह के बारे में भी ।

फ्रांस का गौरव और पतन

सत्रहवीं शताब्दी के फ्रांस के लुई का उदाहरण हमारे सामने है । लुई के सरदार बड़े बहादुर थे । सभी यूरोपीय राष्ट्रों पर फ्रांस का प्रभाव था । राजा लुई ने सोचा कि ये सरदार जिस प्रकार बाहर के राष्ट्रों के लिए आतंक बन गए हैं उसी प्रकार किसी दिन उन्हें भी तकलीफ दे सकते हैं । राजा को उनके प्रधानमन्त्री ने सलाह दी कि यदि आप चाहते हैं कि ये सरदार आपको तकलीफ न दें तो इनको दबाने की कोशिश मत करो । इन्हें आराम दो । अतः उन्होंने एक बड़ा महल बनवाया । उसको पैलेस ऑफ बर्सेल्स कहते हैं । उस महल में एक बड़ा दरबार बनाया । सबके रहने की यथोचित सम्मानजनक व्यवस्था की । कौन किस प्रकार रहेगा, उन पराक्रमी सरदारों की ओर इसका ध्यान दिया गया । बड़े-बड़े ओहदे देकर, बड़ी-बड़ी टाइटल्स वगैरह देकर वहाँ बुलाया । राजा के समान ही उनको भी बड़ा स्थान प्रदान किया गया । सभी आराम से रहने लगे । वहाँ ऐशो-आराम को सब तरह की सुख-सुविधाएँ उपलब्ध करा दीं । परिणाम यह हुआ कि दस साल के अन्दर-अन्दर इन बहादुर कर्तृत्व-

वान और बुद्धिमान लोगों का इतना पतन (Degeneration) हुआ कि सत्रहवीं शताब्दी के फ्रांस की एरिस्टोक्रेसी और सरदार वर्ग में कोई कर्तृत्ववान पुरुष निर्माण नहीं हुआ। यह कितने आश्चर्य की बात है। यह सभी बहादुर, कर्तृत्ववान, बुद्धिमान लोग थे लेकिन पैलेस ऑफ बर्सेल्स की विलासितापूर्ण व्यवस्था, टाइटल्स और ओहदे की मान्यता प्राप्त होते ही उनकी सारी प्रेरणा और कर्तृत्व समाप्त हो गया और उनमें से एक भी प्रतिभावान और कर्तृत्ववान व्यक्ति निर्माण नहीं हुआ। इसी प्रकार का उदाहरण उन्नीसवीं सदी की इटली के सरदार वर्ग का भी है। उन्नीसवीं सदी की इटली के सरदार वर्ग में से इसी प्रक्रिया के कारण कोई कर्तृत्ववान बहादुर पुरुष निर्माण नहीं हुआ।

अन्य देशों के उदाहरण

दुनिया में इसका सबसे बड़ा उदाहरण रोमन साम्राज्यवाद का है। जब रोमन साम्राज्य अपने चरमोत्कर्ष पर था, सारा यूरोप उसके अन्तर्गत था। क्राइस्ट के पश्चात् तीन सौ साल तक इस महान साम्राज्य का वर्चस्व बना रहा। सम्पूर्ण यश, सम्पूर्ण वैभव और सारे यूरोप की सम्पत्ति रोम में इकट्ठी हुई। तीन सौ साल तक यह अवस्था चली और इसका परिणाम यह रहा कि इस तीन सौ साल के काल-खण्ड में लोग ऐसे ऐशपरस्त हो गए कि उनका कर्तृत्व समाप्त हो गया। बहादुरी समाप्त हो गई। इन तीन सौ साल में किसी भी महान व्यक्तित्व का उदय नहीं हुआ। रोमन साम्राज्य अपने चरमकाल में यह कार्य नहीं कर सका, जबकि दूसरी ओर हम यह देखते हैं कि चुनौतियाँ आती हैं तो लोग उठकर खड़े हो जाते हैं। वैभवशाली इटली का पूर्व काल जब चुनौतियों और संकटों से ग्रस्त था, वहाँ के बहादुरों ने उन चुनौतियों को स्वीकार किया, बुद्धिमान लोगों ने अपनी प्रतिभा का प्रगटन किया और प्रि-इटालियन पीरिएड इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा गया। एलिजाबेथ के काल में इंग्लैण्ड के सामने बहुत बड़ी चुनौती आई। वहाँ के बहादुरों ने उसका उचित प्रत्युत्तर दिया और एलिजाबेथ का युग इंग्लैण्ड के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा गया है। रेनेसेंस काल में इटली का इतिहास भी इसी तरह के स्वर्णाक्षरों में लिखा है। फ्रांस की राज्य क्रान्ति के काल के फ्रांसीसी इतिहास के पृष्ठ भी स्वर्णाक्षरों में लिखे गए हैं। जैसे-जैसे आवाहन,

संकट, आपत्तियाँ आती गईं, इन लोगों की बहादुरी, पराक्रम, कर्तृत्व निखर उठा और इनका नाम इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा गया।

कार्यकर्ता का भी पतन

इस प्रकार संकटों के समय जिनकी बहादुरी का थोड़ा प्रकाश दुनिया को दिखाई देता है, उन्हें थोड़ी विजय प्राप्त होती है और कुछ अच्छी व्यवस्था तैयार हो जाने पर धीरे-धीरे स्वयं को पता न चलते हुए उन्नीसवीं शताब्दी के इटली और सत्रहवीं शताब्दी के फ्रांस की तरह लोग निष्प्रभावी हो जाते हैं। यह मनुष्य का स्वभाव है। यह परिवर्तन इतना आहिस्ता-आहिस्ता होता है कि यदि कार्यकर्ता स्वयं अपने बारे में सचेत न रहे तो उसका सँभलना बड़ा कठिन होता है। इसका और भी एक कारण है। हम अच्छे कार्यकर्ता हैं तो लोगों के मन में हमारे प्रति आदर भी रहता है और इस आदर के कारण वे हमारी सेवा करने के लिए तत्पर रहते हैं। धीरे-धीरे वे सेवाभावी हो जाते हैं। यह तो ठीक है, लेकिन उस कारण नेताजी को भी सेवाएँ लेने की आदत पड़ जाती है। उनका भी स्वावलम्बन समाप्त हो जाता है। लोग उपहार देते हैं तो उपहार लेते-लेते वे उसका औचित्य सिद्ध करने लगते हैं। कहने लगते हैं कि उपहार दिया है तो प्रेम से दिया है, मैं कैसे मना कर सकता हूँ, बेचारा नाराज हो जाता। जब कोई उपहार वगैरह आ जाता है तो लाने वाला नाराज न हो जाय, तब इसकी बड़ी फिक्र हो जाती है। धीरे-धीरे स्वयं को पता न लगते हुए यह गिरावट आती जाती है। इसके बारे में स्वयं यदि सतर्क न रहे तो खुद को बचाना बड़ा मुश्किल होता है और खासकर तब जब आदमी स्थापित होने की प्रक्रिया से गुजर रहा होता है। प्रारम्भ में उसके सद्गुणों में कमी नहीं आती है। लेकिन जब नेतृत्व स्थापित हो जाता है तो धीरे-धीरे गिरावट आने की गुंजाइश होने लग जाती है। यह विचार आने लगता है कि अब तो नेतृत्व स्थापित हो गया, इसलिए अब कुछ करने और सोचने की आवश्यकता नहीं है। जो कुछ पाना चाहता था, वह मैं पा चुका हूँ। इस प्रकार काम करने की इच्छा और फिक्र धीरे-धीरे समाप्त हो जाती है और नेतृत्व के कारण जो सुविधाएँ एवं विशेषाधिकार प्राप्त हो जाते हैं अधिक से अधिक उनका उपयोग करने के उपायों और रास्तों की खोज शुरू हो जाती है।

अहंकार का आरम्भ

इसी प्रक्रिया में से आगे चलकर अपने अन्दर अनजाने ही अहंकार घुस जाता है। मूलत: ध्येयनिष्ठ व्यक्ति के मन में भी धीरे-धीरे नेतागिरी के भाव आ जाते हैं और कुछ विजय प्राप्त होने के बाद यह बात आने लगती है कि यह सब मेरे कर्तृत्व और नेतृत्व के कारण सम्भव हो सका है। वह यह भूल जाता है कि वास्तव में यह विजय सबके सामूहिक प्रयास और परिश्रम का परिणाम है। तुलसीदास जी ने भी यह कहा है कि—

लाभ हानि जीवन मरण, यश अपयश विधि हाथ।

जय-पराजय, लाभ-हानि, जीवन-मरण सब भगवान के हाथ में है। तुम्हारे हाथ में कुछ नहीं है। लेकिन कुछ लोग कहते हैं कि तुलसी प्रतिक्रियावादी थे। भगवान के भरोसे रहना और सब कुछ उसी पर छोड़ देने के लिए लोग तैयार नहीं होते। यदि इस विचार को ठीक मान लिया जाय तो भी यह तो स्पष्ट है ही कि एक आदमी के कारण यश नहीं प्राप्त हो सकता। कई सहायक तत्त्व (Attendant factors) उसमें शामिल रहते हैं। अपने कार्यकर्ताओं के द्वारा किए हुए काम, सदस्यों द्वारा दिया गया साथ, मैनेजमेण्ट द्वारा की गई गलती, सरकार के कारण निर्माण हुआ रोष या असन्तोष—ये भी इस सम्भावना के कारण होते हैं। लेकिन जब यश प्राप्त होता है तो दिमाग में गड़बड़ी शुरू हो जाती है। अच्छे-भले नेता के दिमाग में कुछ गड़बड़ शुरू होती है तो दूसरे लोग उसमें और बढ़ोत्तरी कर देते हैं। किसी एक रसिक कवि ने इश्क के बारे में एक शेर कहा है। इश्क की जगह यदि लीडर का शब्द डाल दिया तो वह शेर ऐसा होता है—

वैसे भी तो होते हैं लीडरी में जनून के आसार।
लोग और भी दीवाना बना देते हैं।

कहते हैं नेताजी, कमाल हो गया। आपका कल जो भाषण हुआ वैसा भाषण हमने कभी सुना नहीं। नेताजी सोचने लगते हैं कि यह हैं मेरे कद्रदान। मेरे जो साथी मुझे मेरा दोष बताते हैं, वे सब मेरे प्रतिद्वन्द्वी हैं। मेरे प्रति शायद वे जलन रखते हैं। कद्रदान तो यह हैं। तो फिर धीरे-धीरे अहंकार आने लगता है और वह यह भूल जाता है कि यदि जमीन पर लात मारेंगे तो जमीन भी आपको उतनी ही चोट पहुँचायेगी। आपके अहंकार के प्रज्वलन के साथ-साथ आपके

सभी साथियों का अहंकार भी प्रज्वलित होता है। यद्यपि वे अहंकारी नहीं हैं, निरहंकारी हैं, क्योंकि वे यह जानते हैं कि हमारे प्रमुख कार्यकर्ता के मन में अहंकार नहीं है। वह ध्येयनिष्ठ है। वह ध्येय के प्रति सम्पूर्ण आत्मसमर्पित है। इसलिए बाकी कार्यकर्ता भी ध्येय के प्रति सम्पूर्ण आत्मसमर्पित हैं।

चतुराई से अधःपतन

किन्तु इसका एक पहलू और भी है। इस माहौल में भी कोई कार्यकर्ता धीरे-धीरे चतुराई सीख जाता है। वह सोचता है कि बाकी लोग तो इसी प्रकार आत्मसमर्पित रहने ही वाले हैं। इसमें से मैं अपना कैरियर क्यों न बना लूं। अपना बड़प्पन बढ़ा लूँ। अर्थात् जो आत्मसमर्पित हैं वे बुद्धू हैं, ये चतुर हैं। परन्तु वे यह नहीं सोचते कि अरे, तुम चतुर हो जाओगे तो जो आत्मसमर्पित हैं, उनके अन्दर भी यह चतुराई आ जाएगी। वे आत्मसमर्पित नहीं रहेंगे। वे यह सोचेंगे कि नेताजी यदि अपना कैरियर बनाना चाहते हैं तो हमको भी अपना कैरियर क्यों नहीं बनाना चाहिए और फिर वे आपके प्रतिद्वन्द्वी बनेंगे। कई नेताजी ऐसे हैं कि अपने साथियों को जमने ही नहीं देते। सदा यही सोचते रहते हैं कि उन्हें अपने बीच से कैसे खदेड़ा जाय। उनका कोई प्रतिद्वन्द्वी खड़ा न हो। चतुराई आती है तो यह कोशिश बाद में शुरू होती है। यह सब धीरे-धीरे होता है। खुद को पता ही नहीं चलता है। ध्येयनिष्ठ कार्यकर्ता किस तरह से पतित, स्खलित, डिजनरेट हो जाता है, उसको भी इसका पता नहीं चलता है। हर स्तर पर वह अपने कार्य का औचित्य बताता रहता है। फिर अपने जो साथी प्रतिद्वन्द्वी बन सकते हैं उनको पीछे खदेड़ने का काम शुरू कर देता है। उनके बारे में कानाफूसी शुरू करा देता है कि यह कौन सी नयी बात है। उसने कोई अच्छा काम नहीं किया। यह तो कोई भी कर सकता है। दूसरी पंक्ति का नेतृत्व (Second line of leadership) पैदा न हो, किसी नये कार्यकर्ता को उभरने नहीं दिया जाये, इसके लिए भी कोशिश की जाती है।

एक बड़ा अच्छा उदाहरण है। एक सज्जन मेढक पकड़ कर बेचने का काम करते थे। वे समुद्र किनारे टोकरी लेकर गए और वहाँ जाकर मेढक पकड़ कर टोकरी में डालते रहे। टोकरी में कई मेढक

जमा हो गए। लेकिन टोकरी के ऊपर कोई ढक्कन नहीं था। इतने में उनके एक मित्र उनसे मिलने के लिए आए। उन्होंने देखा कि उनके मित्र समुद्र में कुछ काम कर रहे हैं। मित्र ने उनकी टोकरी भी पहचान ली। उसने देखा कि टोकरी में मेढक थे और वे ऊपर कूद कूद कर निकलने की कोशिश कर रहे थे। उसने अपने मित्र को बुलाया और कहा कि "अरे, तुम मेढक पकड़ना चाहते हो ?" वह बोला, "हाँ"। तो मित्र ने कहा, "जो पकड़े हुए मेढक टोकरी में हैं उनको रोकने के लिए टोकरी के ऊपर कुछ ढक्कन तो रख दो, नहीं तो ये कूदकर चले जाएँगे।" उसने कहा, "नहीं, आप इसकी फिक्र मत करो। कोई भी मेढक बाहर नहीं जायगा। क्योंकि जब कोई मेढक ऊपर जाने की कोशिश करेगा तो बाकी के मेढक उसकी टाँग खींचकर नीचे खींच लेंगे। उनको रोकने के लिए हमको कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं है।"

चतुराई आते ही यह सिलसिला शुरू हो जाता है। समर्पित कार्यकर्ताओं की टोली धीरे-धीरे उम्मीदवारों की टोली बन जाती है। निजी महत्त्वाकांक्षियों की टीम बन जाती है। यह सब इतना अनजाने में होता है कि खुद को पता ही नहीं चलता। हर कदम पर हर कार्यकर्ता सोचने लग जाता है कि इसमें क्या है, ऐसा तो होता ही है। आत्म-औचित्य सिद्ध करते-करते इतना अधिक अध:पतन हो जाता है और जिस सीढ़ी से हम ऊपर चढ़े थे—ध्येयनिष्ठा, आत्मसमर्पण—उस सीढ़ी को लात मारते हैं। सोचते हैं कि अब इसकी आवश्यकता नहीं। जिस वृक्ष की शाखा पर हम बैठ होते हैं, उसी शाखा को हम तोड़ने की कोशिश करते हैं और भूल जाते हैं कि इससे केवल शाखा ही नहीं टूटेगी, उसके साथ हम भी नीचे गिरेंगे। स्वयं अपना समर्थन और औचित्य सिद्ध करते-करते धीरे-धीरे यह अध:पतन होता है।

संख्यात्मक और गुणात्मक शक्ति

अच्छे कार्यकर्ता बनना कठिन है। स्वयं अपने को कायकर्ता बनाए रखना उससे भी कठिन है। यह सब गड़बड़ी नेतृत्व स्थापित हो जाने या विजय के कारण उत्पन्न अहंकार के कारण होती है। हम विचार करें कि संगठन का निर्माण कैसे होता है और वह समाप्त कैसे होता है। वह प्रक्रिया क्या है। जैसे एक कार्यकर्ता किसी उद्योग में यूनियन का

काम शुरू करता है तो वह नयी यूनियन होती है। कोई सदस्यता स्वीकार नहीं करता। कोई पान नहीं खिलाता। कोई चाय नहीं पिलाता। धीरे-धीरे कुछ लोग लिहाज में आकर उसको सदस्यता शुल्क देते हैं। जितनी सदस्यता हो जाती है यूनियन की शक्ति भी उतनी हो जाती है। यह शक्ति होती है संख्यात्मक। यह संख्यात्मक शक्ति क्या है? एक और एक—दो। पहले एक सदस्य आया, फिर दूसरा। दो और एक—तीन। फिर एक और आ गया। तीन और एक—चार। संख्यात्मक शक्ति इस प्रकार बढ़ती है।

कार्यकर्ता को ऐसा लगता है कि मैं अकेला सारा काम कहाँ तक करूँ। अपने जैसे और कार्यकर्ता भी निर्माण करने चाहिए। उस समय उसके मन में यह फितूर नहीं रहता कि नये कार्यकर्ता निर्माण हो गए तो फिर उसकी सीट निकल जाएगी। अब वह सोचता है कि हमने भारतीय मजदूर संघ के अभ्यास वर्ग में कहा है कि श्रेष्ठ कार्यकर्ताओं का वर्ग (Master mind group) खड़ा होना चाहिए। मैं कार्यकर्ताओं का निर्माण करूँगा। इस दृष्टि से वह सम्पर्क रखता और बढ़ाता है। संस्कार देता है। ध्येयनिष्ठा निर्माण करता है। सामान्य सदस्यों में से कार्यकर्ता का निर्माण करता है। कार्यकर्ता जब निर्माण होते हैं तो केवल संख्यात्मक शक्ति नहीं बढ़ती, गुणात्मक शक्ति भी बढ़ती है। इस प्रकार कुल मिलाकर शक्ति में और अधिक वृद्धि होती है। पहले संख्या में वृद्धि होती थी तो वह हिस्सा था एक+एक=दो, दो+एक =तीन और तीन+एक=चार। लेकिन जब ध्येयनिष्ठात्मक कार्यकर्ता आते हैं तो एक और एक मिल कर ग्यारह होते हैं, दो नहीं। तीसरा कार्यकर्ता खड़ा होता है तो १११ होते हैं और चौथा कार्यकर्ता खड़ा होता है तो ११११ होते हैं, चार नहीं होते। ध्येयनिष्ठा के कारण यह दूसरी प्रक्रिया प्रारम्भ होती है। चार कार्यकर्ता यानी एक हजार एक सौ ग्यारह।

अहंकार से शक्ति-क्षय

लेकिन यह ११११ की शक्ति जो यहाँ प्रभावित (Dominate) करती थी, वह यहीं परास्त भी हो जाती है जब लोग हमारी जय-जयकार शुरू कर देते हैं। जब हम समझौते की मेज पर पहुँचते हैं। मालिक और मैनेजर हमारी तारीफ करना शुरू कर देते हैं। सरकारी

कमेटियों में हमारा जाना शुरू हो जाता है। धीरे-धीरे अहंकार भी प्रवेश करता है। पहला कार्यकर्ता सोचता है कि यह सब मेरे कारण ही तो है। यह मेरे विशिष्ट कार्यकर्ता वर्ग में जो लोग हैं, वे कौन होते हैं। उनको तो मैं ही लाया हूँ। यह तो पहले डरता था, भागता था। यह तो ऐसा था, यह तो वैसा था। मैंने ही तो इसको कार्यकर्ता बनाया। यह मेरी निर्मिति है। मेरा कबूतर मेरे से ही गुटर-गूं करेगा तो यह कैसे चलेगा। धीरे-धीरे अहंकार निर्माण होता है। और इस अहंकार से क्या होता है? पहले जो संख्या बढ़ती थी एक और एक करते-करते चार, फिर जिन चार लोगों ने विशिष्ट कार्यकर्ता वर्ग तैयार किया तो वही संख्या हो गई एक हजार एक सौ ग्यारह (११११)। लेकिन प्रमुख कार्यकर्ता के मन में जो अहंकार आया उसने काम किया दशमलव का। यह दशमलव बिन्दु सबसे पहले आ गया। यदि ·११११ हो तो कुल मिला कर शक्ति कितनी होगी, आप इसका अंदाजा कीजिए। ·१ की शक्ति क्या होती है? एक दशांश यानी १/१०। दूसरे एक की शक्ति होती है १/१००, तीसरे एक की शक्ति होती है १/१००० और चौथे एक की शक्ति होती है १/१००००। लेकिन ये १/१०, १/१००, १/१०००, १/१०००० चारों का योग करें तो भी एक नहीं बनता। इस प्रकार अहंकार दशमलव बिन्दु का काम करता है।

उत्कर्ष और अपकर्ष

यहीं से कार्यकर्ता टूटने लगता है। अपना औचित्य बताता है कि मैं क्या करूँ। अर्थात् कोई भी काम ऊपर कैसे जाता है और नीचे कैसे आता है, हम इसका अनुमान लगा सकते हैं। यह सब भगवान ने सृष्टि के नियम के नाते निर्माण किया है। भगवान ने बताया है कि लोग ऊपर कैसे जाते हैं और नीचे कैसे आते हैं।

त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते।
ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोकमश्नन्ति दिव्यान्दिवि देवभोगान्॥

अर्थात् जो यज्ञ करने वाले हैं, हवन करने वाले हैं, चाय भी न लेते हुए दिन भर तपस्या करने वाले हैं, वे स्वर्ग गति की इच्छा करते हैं; और यह जो सारी मेहनत की है, इस पुण्य के कारण वह सुरेन्द्र लोग,'स्वर्ग लोक में जाते हैं और वहाँ जो सारी उपभोग्य चीजें हैं,

उनका वे आस्वाद लेते हैं। लेकिन आस्वाद लेते-लेते भगवान ने कहा कि—

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।

यह स्वर्ग लोक का प्रसाद है। जिस पुण्य के कारण यह ऊपर गया है वह पुण्य क्षीण होता जाता है और फिर कहा कि **'क्षीणे पुण्ये'**। वह खूब उपभोग करता है, उसका औचित्य भी सिद्ध करता है कि यह तो सारी दुनिया के लोग करते हैं। ऐसा कहते-कहते उसका पुण्य क्षीण हो जाता है और जब उपभोग सम्पूर्ण और पुण्य जीरो हो जाता है तो कहा गया है कि **"क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकम् विशन्ति'**। फिर से स्वर्ग लोक से मृत्यु लोक में आ जाता है। अपने चुनाव क्षेत्र में वापस (Back to the constituency) आ जाते हैं। यह भगवान की बनाई हुई प्रक्रिया है। इसमें राजनीतिक छूट नहीं है। इससे कोई भी मुक्त नहीं है। जब धीरे-धीरे अध:पतन होने लगता है तो हर स्तर पर औचित्य सिद्ध करते-करते एक दिन पता चलता है कि अब तो सारा मामला पकड़ के बाहर चला गया है। फिर वह अपने को दुरुस्त नहीं कर पाता।

स्वयं को सँभालें

हम तो सामान्य कार्यकर्ता हैं। जो चारित्रिक और बाकी दृष्टि से श्रेष्ठ लोग हैं उन सन्तों ने भी कहा है कि अन्तर्बाह्य जगत के साथ रात-दिन हमें लड़ाई लड़नी पड़ती है। जगत के साथ लड़ाई करना आसान है, मन के साथ लड़ाई करना काफी कठिन काम है। यदि हम अपने मन को नहीं सँभालते तो हमारा मन हमको कहाँ ले जाएगा, इसका कोई भरोसा नहीं। और इसी दृष्टि से यह कहा गया कि हमारा सबसे बड़ा मित्र कौन है ? हम खुद हैं। हमारा सबसे बड़ा दुश्मन कौन है ? हम स्वयं हैं। हमें कोई नष्ट नहीं कर सकता। हमें कोई गिरा नहीं सकता। न कम्युनिस्ट गिरा सकते हैं, न मैनेजमेंट गिरा सकते हैं, न सरकार गिरा सकती है। तो यह बात समझ कर कि अपने सबसे बड़े शत्रु हम स्वयं हैं, स्वयं को सँभालें। यह शत्रुत्व एक ऐसी निश्चित प्रक्रिया है कि स्वयं अपने को पता न चलते हुए धीरे-धीरे हम गड्ढे में चले जाते हैं। इसलिए यदि हम स्वयं अपने ऊपर निगरानी नहीं रखेंगे, तो बाहर का आदमी कुछ नहीं कर

सकता। हमारी ध्येयनिष्ठा में कोई समझौता नहीं आना चाहिए। यदि हम अपनी निगरानी नहीं रखेंगे और केवल सेल्फ जस्टिफिकेशन की आदत बनायेंगे तो हमारा भी माया मछिन्दर होने में ज्यादा देर नहीं लगेगी और फिर लोग भी आश्चर्य करेंगे कि साहब यह तो बड़ा अच्छा कार्यकर्ता था, इसको क्या हो गया ? हमें भी यह कहना पड़ेगा कि भाई यह मछिन्दर नाथ बन गया। स्वयं को ठीक बनाए रखने के लिए हम में से हरेक कार्यकर्ता को सतर्क प्रयास करते रहना चाहिए। बाकी दुनिया को सँभालना है, यूनियन को सँभालना है, मैनेजमेंट के साथ बात की है, यह अलग बात है; लेकिन स्वयं अपने साथ हम दिन-रात लड़ाई लड़ते हैं या नहीं। पग-पग पर स्खलन के मौके आते हैं। अपने बारे में निगरानी रखते हुए हम स्वयं अपने को ठीक ढंग से चलाएँ। यदि कार्यकर्ता ठीक है तो जैसा मैंने प्रारम्भ में कहा, कार्य-क्षेत्र भी ठीक रहेगा। कार्यक्षेत्र कार्यकर्ता का प्रतिबिम्ब मात्र है। कार्यकर्ता यदि अच्छा है तो कार्यक्षेत्र अच्छा रहेगा। उसके लिए अलग से कोशिश करने की आवश्यकता नहीं है। हम स्वयं अपने को अच्छा रखें। सारे क्षेत्र की चिन्ता भगवान कर लेगा। □

६

समाधान

प्रश्न—हमारे ही कुछ मित्रों ने, जो कि राजनीति में सक्रिय हैं, केरल में एक ट्रेड यूनियन बनाई है। इससे हमारे कार्यकर्ताओं में कुछ विभ्रम-सा निर्माण हुआ है। राजनीतिक चमक-दमक से प्रभावित कुछ लोग उधर आकृष्ट भी हो रहे हैं। इस परिस्थिति में से हम कैसे बाहर निकलें और इस परिस्थिति को रोकने के लिए भारतीय मजदूर संघ क्या उपाय अपनाये ?

उत्तर—यदि कोई राजनीतिक दल श्रम गतिविधि आरम्भ करता है तो उसे करने दो। आप उसमें बाधा क्यों बनें ? आप अपना काम करें, वे अपना काम करें। चिन्ता करने की कोई जरूरत नहीं है। यह एक प्रशंसाविहीन काम (Thankless job) है और राजनीतिक लोग कोई भी प्रशंसाविहीन काम करने के अभ्यस्त नहीं होते। वे बड़े बुद्धिमान होते हैं। बिना कठोर परिश्रम किये प्रधान मन्त्री बनने का वे रास्ता

खोजते रहते हैं। अतः किसी भी राजनीतिक दल द्वारा केरल में कोई श्रम संगठन शुरू करने से आपको चिन्ता करने की जरूरत नहीं।

प्रश्न—हम जहाँ-जहाँ काम करते हैं, प्रत्येक स्थान पर प्रतिदिन हमको संसद् सदस्यों और विधायकों की पर्याप्त आवश्यकता कार्य में प्रतीत होती है। मेरा प्रश्न यह है कि भारतीय मजदूर संघ बहुत बड़ा संगठन है, वह अपने ही संसद् सदस्य और विधायक क्यों न खड़े करे ?

उत्तर—आपने जो कहा उससे हमें बड़ा आश्चर्य हो रहा है। ऐसा है कि एक हाथी होता है और एक महावत। हमारी इच्छा है कि आप महावत बनें और आप कह रहे हैं कि हाथी बनना चाहिए। आप चुनाव में खड़े होना नहीं चाहते, यह मैं जानता हूँ। भारतीय मजदूर संघ का नेतृत्व आसमान में चलने वाली राजनीतिक पार्टी का नेतृत्व नहीं है। किसके मन में क्या है, यह भी हम लोग पूरी तरह से जानते हैं ? बताते नहीं हैं। हमारे जानते हुए भी कोई हमारे सामने यदि नाटक करे तो भी हम सब चाहते हैं कि आपको महावत होना चाहिए। आप किसलिए हाथी बनना चाहते हैं ?

प्रश्न—आप कहते हैं कि भारतीय मजदूर संघ किसी भी राजनीतिक पार्टी से सम्बद्ध नहीं है, फिर भी राजनेता भारतीय मजदूर संघ के मंच पर कई समारोहों अथवा कार्यक्रमों में उपस्थित पाए जाते हैं। ऐसा क्यों होता है ?

प्रश्न—राजनीति से या राज्य की नीति से किस तरह दूर रहा जा सकता है, विशेषकर भारतीय मजदूर संघ के सन्दर्भ में ?

प्रश्न—अन्तिम उद्देश्य व्यक्ति का जीवन-स्तर उठाना है। पिछले पन्द्रह सौ वर्षों के इतिहास में संस्कृतियों और राष्ट्रों के उत्थान-पतन, आविर्भाव और विलुप्त होने में राजनीति की प्रमुख भूमिका रही है। राज्य-स्थापना के पश्चात् अनेक राज्य जन्मे और राजनीतिक शिथिलता के कारण राज्य विलीन हुए अथवा छोटे हुए हैं। ऐसी परिस्थिति में गैर-राजनीतिक अवधारणा क्या अपराधपूर्ण उपेक्षा नहीं है ?

उत्तर—यहाँ सभी पुराने लोग हैं। इसके कारण प्रश्न के उत्तर के पूर्व कुछ सुनी हुई पुरानी बातें संक्षेप में केवल याद दिला दूँ, फिर उत्तर के बारे में विचार किया जाएगा। भारतीय मजदूर संघ वास्तविक मजदूर संगठन (Genuine trade union organisation) है—मजदूरों का, मजदूरों के लिए, मजदूरों द्वारा चलाया हुआ संगठन। इसलिए हम गैर-राजनीतिक हैं। कम्युनिस्टों का मॉडल अपने सामने रखने के कारण हमसे पूर्व सभी संगठन किसी न किसी राजनीतिक दल के अंग के रूप में थे। जब हम लोगों ने अपने को गैर-राजनीतिक (Non-political) घोषित किया तो इसके विषय में बहुत चर्चा हुई और आपत्तियाँ भी उठाई जाती थीं। इसका एक कारण यह था कि भारतीय मजदूर संघ का प्रारम्भ करने वाले पहले बैंच में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के लोग ही प्रमुख रूप में रहे। संघ के लोग मजदूर संघ में पूर्ण समय कार्यकर्ता के रूप में या अर्द्धकालिक कार्यकर्ता के रूप में आते जाएँ, यह हमारा प्रयास भी रहा।

इसका भी कारण है। आज देश बहुत आगे बढ़ चुका है। सभी लोग चतुर हो गए हैं। आज 'सत्तातुराणाम् न दल: न राष्ट्र:' वाली अवस्था है। १९४७ के पहले जीवन-मूल्य दूसरे थे। रामप्रसाद बिस्मिल ने फाँसी दिये जाने के पूर्व जेल में कहा कि—

सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है,
देखना है जोर कितना बाजु-ए-कातिल में है।
खींचकर लाई थी सबको कत्ल होने की उम्मीद,
आशिकों का आज जमघट कूचा-ए-कातिल में है॥

कत्ल होने की आशा से ही हम लोग यहाँ आए थे। आज यदि देश का कोई आदमी ये पंक्तियाँ कहेगा तो उसको जरूर पागलखाने भेजा जाएगा। और आज यदि ये पंक्तियाँ कहनी ही हों तो जरा सुधार करके लोग कहेंगे। वे यह नहीं कहेंगे कि 'खींचकर लाई थी सबको कत्ल होने की उम्मीद,' वे कहेंगे—

खींचकर लाई थी सबकी मन्त्री होने की उम्मीद।

अब लोग बहुत चतुर हो गए हैं। साठ करोड़ में से साठ करोड़ लोग प्रधान मन्त्री बनना चाहते हैं। सन् '४७ के पहले की भावना लेकर चलने वाले को अब पागल कहा जाता है। हम लोग तो ढूँढ़ रहे हैं कि देश में ऐसे 'पागल' लोग कहाँ मिलेंगे? मिलते ही नहीं,

सभी 'बुद्धिमान' हैं। यह खोज करते समय हमारे ख्याल में आया कि 'पागल' लोग पैदा करने का एक मात्र कारखाना राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ है। उस कारखाने से 'पागलपन' का जितना अच्छा माल आता है, उतना अच्छा माल और किसी कारखाने से नहीं आता। इसलिए हम अपना नम्बर वहाँ लगा कर रखते हैं कि भाई, जैसे-जैसे माल पैदा होता जाय, इधर भेजते जाओ। खैर, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के ये लोग जनसंघ में भी थे और विद्यार्थी परिषद् में भी थे। यह एक बात है। दूसरी बात यह कि लोगों के सामने एक ही मॉडल था—इंटक (INTUC) कांग्रेस की विंग, ऐटक (AITUC) कम्युनिस्ट पार्टी की विंग, हिमस (HMS) सोशलिस्ट पार्टी की विंग। अतः यदि कोई सेंट्रल लेबर आर्गनाइजेशन है तो उसे भी किसी न किसी पालिटिकल पार्टी का विंग होना ही चाहिए, ऐसा लोगों को लगता है। लेकिन यदि इधर हम लोगों की कोई पालिटिकल पार्टी नहीं, तो उधर उन लोगों का कोई लेबर आर्गनाइजेशन नहीं है। हमारा जो गैर-राजनीतिक संगठन का सिद्धान्त है वह देश में पहले किसी ने सुना ही नहीं, न किसी ने देखा है, न किसी को अनुभव है। और फिर जब यह देखते हैं कि संघ के लोग दोनों तरफ हैं तो स्वाभाविक रूप से लोग अन्दाज लगाते हैं कि ये कुछ भी कहें, दाल में कुछ काला जरूर है। कुछ लोग तो यहाँ तक कह देते थे कि आप खुल्लमखुल्ला नहीं बोलते, यह भी राजनीति है।

इसमें कुछ व्यावहारिक कठिनाइयाँ भी थीं। दोनों तरफ संघ के लोग हैं। अपना समान सिद्धान्त भी है। व्यक्तिगत मित्रता तो छूटी नहीं। जब हम कम्युनिस्टों के साथ व्यक्तिगत मित्रता रखते हैं तो संघ वालों के साथ मित्रता छोड़ने का तो सवाल ही नहीं। कभी-कभी मित्रता में मर्यादा का पालन भी होता है। एकाध बार उल्लंघन भी होता है। मित्रता, आप लोग जानते ही हैं कि यह प्रेम बड़ा कठिन काम है। मर्यादा के अन्तर्गत रहते हुए काम करना सभी के लिए सदैव संभव होगा, यह बड़ा कठिन है। इसके कारण भी मर्यादा का उल्लंघन कभी-कभी होता था। जैसे अभी एक प्रश्न भी आया कि यदि हम गैर-राजनीतिक हैं तो हमारे मंच पर राजनीतिक लोग क्यों दिखाई देते हैं ? जब यह प्रश्न आया तो मेरे मन में यह उत्तर आया था कि जगदीश प्रसाद दीक्षित हमारे ऑल इण्डिया डी० आर० एम० एस०

का उद्घाटन करने आए थे, वे कांग्रेस (आई) के लेबर मिनिस्टर हैं। उनके बारे में भी आप यही कहेंगे क्या? तरह-तरह के लोग अपने इस मंच पर आए हैं। लेकिन भाजपा के सम्बन्ध में प्रश्न पूछने वाले जगदीश प्रसाद दीक्षित वगैरह का उदाहरण भूल गए, यह दिखता है। अपने इस व्यवहार के कारण हम लोग कहते थे कि हम वास्तव में गैर-राजनीतिक हैं। हाँ, यह ठीक है कि दोनों तरफ संघ के लोग और व्यक्तिगत सम्बन्ध होने के कारण मर्यादा का पालन होता है। कभी उल्लंघन भी होता है। मर्यादा भंग न हो, इसकी चिन्ता हम करेंगे। लेकिन जब हम कहते थे कि वास्तव में हम गैर-राजनीतिक हैं तो लोग मानते नहीं थे। हमारा 'हाँ' कहना और उनका 'ना' कहना चलता रहा। उस समय हम कार्यकर्ताओं को कहते, भाई, आप ज्यादा बहस के झंझट में मत जाइए, वास्तव में हम गैर-राजनीतिक स्तर पर काम करेंगे तो लोगों के ख्याल में सब बातें आ जायेंगी, चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है। और यदि हम गैर-राजनीतिक नहीं हैं, ईमानदार नहीं हैं, उधर कह रहे हैं हम गैर-राजनीतिक हैं और इधर राजनीतिक दल की शाखा के रूप में काम करते हैं तो भगवान का न्याय ऐसा है कि दुनिया में कोई भी बात छिपकर रहती नहीं। न पाप छिपकर रहता है, न पुण्य छिपकर रहता है। कोई किसी को ज्यादा देर तक बुद्धू नहीं बना सकता। अपना वास्तविक गैर-राजनीतिक चरित्र (Really non-political character) कायम रखें, सब बातें स्वयं साफ हो जायेंगी। गैर-राजनीतिक चरित्र अपनाने का एक कारण यह भी था कि हम लोग संघ के लोग हैं, और संघ के लोग दोनों तरफ हैं। राष्ट्र-रचना के विषय में संघ का भी एक विचार है, जिसमें से गैर-राजनीतिक चरित्र यह प्रश्न निकलता है।

संघ का यह विचार है कि राजनीतिक दल का दायरा उतना ही रहना चाहिए जितना उस राजनीतिक दल के ब्लू प्रिंट में राज्य का दायरा होता है। सत्ता के बाहर रहते हुए भी राजनीतिक दल का दायरा उतना ही रहना चाहिए। यह ठीक है कि पार्टी जब सत्ता में आती है तो सभी कुछ उसके अन्दर आ सकता है। विरोध दल में है तो सब कुछ उसके अन्दर नहीं आता। लेकिन ब्लू प्रिंट में विषयानुसार कार्यक्षेत्र जो राज्य का होगा, अन्ततोगत्वा वही कार्यक्षेत्र राजनीतिक

दल का भी होना चाहिए। (Subject-wise jurisdiction of the state and of the political party should be co-terminus, co-extensive)। जबकि कम्युनिस्ट बता रहे हैं कि किसान सभा और स्टूडेण्ट्स फेडरेशन भी उनके अधीन हैं। उनका यह कहना बिल्कुल तर्कशुद्ध है, शास्त्र शुद्ध है। क्यों ? क्योंकि वे स्पष्ट रूप से कह रहे हैं कि उनका जो अन्तिम ब्लू प्रिंट है उसमें सर्वहारा का अधिनायकवाद (Dictatorship of the politariat) आता है। अब आप भले ही कहें कि यह अधिनायकवाद सर्वहारा का है या पार्टी का है या व्यक्ति का। यह उनका सवाल है। उसमें जाने की आवश्यकता नहीं। लेकिन वे स्पष्ट रूप से कहते हैं कि डिक्टेटरशिप का मतलब ही होता है कि हर चीज राज्य के अन्तर्गत, हर चीज राज्य के लिए, और राज्य के बाहर कुछ भी नहीं (Every thing within the state, every thing for the state and nothing outside the state)। डिक्टेटरशिप के अन्तर्गत सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, व्यक्तिगत जितनी गतिविधियाँ चलती हैं, सभी राज्य के अन्तर्गत आ जाती हैं। कम्युनिस्टों का अल्टीमेट ब्लू प्रिंट 'डिक्टेटरशिप' का है अर्थात् उनका राज्य सर्वेसर्वा है, यह वे स्पष्ट रूप से कहते हैं, छुपाते नहीं हैं। इसलिए उनके पालिटिकल पार्टी का विषयानुसार कार्यक्षेत्र उतना ही होना चाहिए। इसके कारण उनके ब्लू प्रिंट में जैसे सभी सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक इकाइयाँ राज्य के अन्तर्गत रहेंगी, वैसे ही सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक सभी जन-संगठन कम्युनिस्ट पार्टी के अन्तर्गत फ्रण्ट आर्गनाइजेशन के रूप में रहेंगे। उनकी यह रचना उनकी दृष्टि से बिल्कुल शास्त्र शुद्ध है।

क्या हम इसी तरह चाहते हैं कि सरकार सर्वेसर्वा बने ? हम यह नहीं चाहते। हम सरकार का दायरा चाहते हैं कम-से-कम। भारतीय विचार से शासनविहीन समाज आदर्श स्थिति है। लेकिन यह शासनविहीन समाज अव्यावहारिक दिखता है तो न्यूनतम शासनयुक्त समाज अपने यहाँ अच्छा माना गया है जिसमें सामाजिक, आर्थिक इकाइयाँ स्वयं शासित होनी चाहिए। यह अपनी भारतीय समाज-रचना है। हमारे अल्टीमेट ब्लू प्रिंट में राज्य का कार्यक्षेत्र (State jurisdiction) सीमित है। सामाजिक, आर्थिक इकाइयाँ स्वायत्त, स्वयं शासित होनी चाहिए, यह हमारी मान्यता है। राजनीतिक दल और

राज्य के कार्यक्षेत्र का विराम बिन्दु एक ही होना चाहिए। इस दृष्टि से और इसलिए जन-संगठन पार्टी के अन्तर्गत नहीं होना चाहिए। भारतीय आदर्श के अनुसार हम लोग यह कल्पना कर रहे हैं कि सरकार सर्वेसर्वा न हो, पार्टी भी सर्वेसर्वा न हो। राष्ट्रीय भावना से प्रेरित जन-संगठन अपने सदस्यों और देश के हितों की रक्षा करें, अपने सदस्यों की शक्तियों का उपयोग राष्ट्र-निर्माण के कार्य में कैसा हो, यह देखें। सरकार यदि अच्छा काम करती है तो उसे सहयोग दें, गलत काम करती है तो उसका विरोध करें। सरकार को देश का एकमात्र शक्ति-केन्द्र न बनने देते हुए वैकल्पिक शक्ति-केन्द्र (Aternate power centre) के नाते कार्य करें। भारतीय समाज रचना की दृष्टि से यह तर्कशुद्ध बात है।

इस दृष्टि से संघ का भी यह विचार है कि सबकुछ राजनीतिक दल के अन्तर्गत रहना गलत बात है। जैसे सरकार का दायरा सीमित चाहते हैं, वैसे ही राजनीतिक दल का दायरा भी सीमित होना चाहिए। जन-संगठन स्वतन्त्र होना चाहिए। यदि आज हम वैकल्पिक शक्ति केन्द्र नहीं बन सकते तो कम से कम दबाव गुट (Pressure group) तो बन ही सकते हैं। यह भी एक कारण था कि हम लोगों ने गैर-राजनीतिक रहने का निश्चय किया।

इस सम्बन्ध में बहुत लम्बी बहस चली। हाँ-ना, हाँ-ना चलती रही। लेकिन जैसे-जैसे दूसरी तरफ के लोग सत्ता में आने लगे, १९६७ में संविद सरकार बनी तो लोगों ने देखा कि संविद सरकार के मन्त्रियों के खिलाफ भी हमने प्रदर्शन किए। १९७७ में चार राज्यों में जनसंघ के मुख्यमन्त्री थे, वहाँ भी हमारे बड़े प्रखर आन्दोलन हुए। वह जिसे हमारी नटोरियस स्ट्राइक कहा जाता है, जिसके कारण हमें वर्ल्ड नटोरिटी प्राप्त हुई, वह हड़ताल दिल्ली में हुई। वहाँ भाजपा का शासन था। पानी के प्रश्न पर भारतीय मजदूर संघ के लोगों ने वहाँ हड़ताल करायी। अब उसमें किसका दोष था, किसका दोष नहीं था, यह छोड़ दीजिए। किन्तु उसके कारण सी० पी० आई० और सी० पी० आई० (एम०) के लोग पूछने लगे, कि आपने यह क्या किया? हमने कहा, "ठीक किया।" आज सी० पी० आई०, सी० पी० आई० (एम०), ए० आई० टी० यू० सी० और सी० आई० टी० यू० सी० के लोग, या चोटी के कोई जिम्मेदार नेता यह नहीं कहते कि भारतीय

मजदूर संघ भाजपा की मजदूर शाखा है। दिल्ली वाटर वर्क्स की हड़ताल के पहले जो भाजपा की शाखा होने की बात कहते थे, आज नहीं कहते। अब वे भाजपा के प्रति 'नरमी' (Softness) की बातें कहते हैं। हम भी उनको कहते हैं, भाई, कौन किसके साथ नरम होगा, कुछ इसका हिसाब नहीं हो सकता। यह विचार करने की बात है।

जब हम लोगों ने स्वयं को गैर-राजनीतिक कहा तो लोग कहने लगे कि यह सम्भव हो कैसे सकता है? उस समय हम लोग कहते थे, "ग्रेट ब्रिटेन का उदाहरण देखिए। ग्रेट ब्रिटेन की ब्रिटिश लेबर पार्टी, ब्रिटिश ट्रेड यूनियन कांग्रेस से पैदा हुई है, तो भी ब्रिटिश लेबर पार्टी सम्पूर्ण देश की सेवा करना चाहती है। ब्रिटिश ट्रेड यूनियन कांग्रेस श्रमिकों की सेवा करना चाहती है। आर्थिक शब्दावली में यदि कहा जाय तो ब्रिटिश ट्रेड यूनियन कांग्रेस के ग्राहक हैं सारे मजदूर, ब्रिटिश लेबर पार्टी के मजदूर हैं सारे उपभोक्ता, और कभी-कभी सरकार की गलत नीतियों के कारण उपभोक्ता और मजदूरों के हितों में यदि विरोध हो जाता है तो उपभोक्ता का पक्ष लेकर मजदूरों के खिलाफ जाने की परिस्थिति निर्माण होती है। यह परिस्थिति ग्रेट ब्रिटेन में कई बार निर्माण हुई। ब्रिटिश ट्रेड यूनियन कांग्रेस में से पैदा हुई ब्रिटिश लेबर पार्टी और उसके खिलाफ हड़ताल करना ब्रिटिश ट्रेड यूनियन कांग्रेस के लिए कई बार आवश्यक कहा गया। शुरू में वहाँ भी भ्रम था। ब्रिटिश ट्रेड यूनियन कांग्रेस से ब्रिटिश लेबर पार्टी निकली तो दोनों तरफ अधिकारी बनने की इच्छा लोगों में प्रबल थी। अपने यहाँ भी ऐसा है कि हम जितनी संस्था के अध्यक्ष बन सकें उतना अच्छा है, ऐसा लोग सोचते हैं। क्योंकि काम कहीं भी नहीं करना है। वहाँ भी लोग सोचते थे कि हम लेबर पार्टी में प्रमुख रहेंगे और ट्रेड यूनियन कांग्रेस के भी अध्यक्ष बने रहेंगे। बाद में यह अनुभव में आया कि ट्रेड यूनियन का काम चौबीस घण्टे का काम है और राजनीतिक दल का भी काम चौबीस घण्टे का है, और एक आदमी दो काम कर नहीं सकता। यह भी दिखाई दिया कि यदि मजदूरों की ही बात सोचते हैं तो राजनीतिक दल का काम नहीं चल सकता, क्योंकि चुनाव जीतने के लिए गैर-मजदूरों का भी वोट प्राप्त करना है। इस दृष्टि से दोनों तरफ के पदाधिकारी एक नहीं

होना चाहिए। इंग्लैण्ड में उन्होंने यह परम्परा डाल दी। वहाँ संविधान में ऐसा कोई नियम नहीं है।

अमरीका का उदाहरण लें तो देखेंगे कि वहाँ कोई भी ट्रेड यूनियन किसी भी राजनीतिक दल के अन्तर्गत नहीं है। लेकिन एक बात है कि वहाँ ट्रेड यूनियन बहुत शक्तिशाली है। हमारे यहाँ एक ही उद्योग में एक से अधिक यूनियनें होने के कारण मैनेजमेंट और सरकार एक को दूसरे के खिलाफ लड़ा-भिड़ा सकते हैं। ऐसी बात वहाँ नहीं है। साथ ही वहाँ एक भी ट्रेड यूनियन नहीं, जो किसी राजनीतिक दल के अन्तर्गत हो। वहाँ कम्युनिस्ट पार्टी का तो प्रभाव ही नहीं है। १६७६ में मैं उधर गया था। उस समय सोशलिस्ट पार्टी में विभाजन हुआ ही था। विभाजन के पहले अमरीका में उनकी कुल संख्या सत्तर हजार थी। मैं गया तो लोग मुझसे पूछते थे कि आपके पहले तो हिन्दुस्थान का कोई सोशलिस्ट नेता यहाँ नहीं आया। यदि कोई सोशलिस्ट भारत से नहीं आया तो एक पार्टी की दो पार्टियाँ अमरीका में कैसे हो गईं ? विभाजन विशेषज्ञ लोग तो हिन्दुस्थान में बैठे हैं। खैर, वहाँ दो प्रमुख राजनीतिक दल हैं—डेमोक्रेटिक और रिपब्लिकन। दोनों के श्रमिक संगठन नहीं हैं। वहाँ चुनाव के समय क्या होता होगा ?

वहाँ हर एक जिले में और बड़े शहर में ट्रेड यूनियन काउंसिल होती है। आप ट्रेड यूनियन काउंसिल के दफ्तर में जाएँगे तो सामने ही दीवार पर आपको एक चार्ट मिलेगा। उस पर उस ट्रेड यूनियन काउंसिल के रीजनल टेरीटोरियल जूरिस्डिक्शन के सभी लेजिस्लेचर्स के नाम एक के नीचे एक आपको दिखेंगे। यदि अपने यहाँ की परिभाषा में बोला जाय तो पहले संसद् सदस्य, फिर विधायक, फिर निगम पार्षद या फिर नगरपालिका अध्यक्ष वगैरह के नाम। उसके बाद के खाने में यह लिखा होगा कि अमरीकी कांग्रेस (संसद्) में श्रमिकों से सम्बन्धित कोई विधेयक किस तारीख को आया। फिर दूसरा खाना उस प्रतिनिधि को दिए जाने वाले अंकों का होता है। इसी प्रकार अन्य प्रतिनिधियों का भी चार्ट होता है। यदि उसने मजदूरों के पक्ष में मतदान किया होता है तो उसको +२५ अंक दिए जाते हैं और यदि मजदूरों के विरोध में मतदान किया होता है तो —२५ अंक दिए जाते हैं। लेकिन यदि कोई ऐसा सवाल होता है

जिस पर आम जनता मजदूरों की माँग के खिलाफ है और जनता का दबाव इतना है कि अच्छा न होते हुए भी और आम जनता के खिलाफ होने के कारण वह मजदूरों के खिलाफ वोट देता है तो –२५ की जगह –१३ करते हैं। मजदूर के पक्ष में वोट दिया तो +२५, मजदूरों के विरोध में वोट दिया तो –२५, इस तरह प्रत्येक का अंक-पत्र तैयार होता है। चुनाव के पहले इतना तो दिखाई देता है कि अगले चार साल में प्रमुख पार्टी के कौन-कौन से प्रश्न आने वाले हैं। उन प्रश्नों के विषय में प्रश्नावली तैयार की जाती है। यह प्रश्नावली सभी उम्मीदवारों के पास भेजी जाती है और उनके उत्तर मँगवाए जाते हैं।

देखने-सुनने में यह बहुत आसान लगता है। हमारे देश में तो हर उम्मीदवार हर सवाल का जवाब 'हाँ' ही कहता है। वह जानता है कि आगे कोई उसका हाथ पकड़ने वाला नहीं है। लेकिन वहाँ ऐसी परिस्थिति नहीं। वहाँ मजदूर सुशिक्षित है, जाग्रत है, संगठित है। जनता भी सुशिक्षित और संगठित है। इस कारण वहाँ यह बात नहीं चल सकती। चुनाव के पूर्व उम्मीदवार या पार्टी कोई आश्वासन दे दे और बाद में पौने पाँच साल तक वह अपने चुनाव क्षेत्र में न भी जाये तो उसको कोई तकलीफ नहीं है, ऐसा भी वहाँ नहीं चलता। वहाँ सीधा सवाल पूछा जाता है कि अगर आप करना चाहते हैं तो 'हाँ' बोलिए, नहीं करना चाहते तो सीधा 'ना' बोलिए। और यदि कोई 'हाँ' कहकर मुकर जाते हैं तो जनता उसका सामाजिक बहिष्कार कर देती है, सड़क पर घूमने नहीं देती। जनता और मजदूरों में वहाँ इतनी जागृति है।

हर एक उम्मीदवार प्रश्नावली का जो उत्तर भेजता है वह पहले प्रकाशित किया जाता है। उसके पश्चात् ट्रेड यूनियन काउंसिल की बैठक होती है। ट्रेड यूनियन कांग्रेस में उस क्षेत्र की सभी यूनियन के एक-एक, दो-दो प्रतिनिधि रहते हैं। प्रश्नावली का उत्तर और उम्मीदवार का पिछले चार साल का रिकार्ड देखकर किसको वोट देना उचित रहेगा, इसपर विचार होता है। कभी-कभी उम्मीदवारों से अलग-अलग बात भी करते हैं। यदि किसी स्पष्टीकरण की आवश्यकता हुई तो सिफारिश जारी करते हैं। लेकिन उस सिफारिश को मानने की कोई बाध्यता नहीं होती। सिफारिश ऐसी होती है कि

अमुक आदमी श्रमिकों का पक्षधर मालूम होता है, इसको वोट देना चाहिए।

यह पद्धति देखकर हमको आश्चर्य हुआ। इसलिए हमने पूछा कि आप इसका क्रियान्वयन कैसे कर सकते हैं क्योंकि अमरीकी कांग्रेस में किया जाने वाला मतदान दल के सचेतक द्वारा दिए गए निर्देश के अनुसार होता है। चुनाव में उम्मीदवार द्वारा किए गए वायदे के आधार पर तो वहाँ मतदान होता नहीं। पार्टी का ह्विप जैसा होगा, वैसी वोटिंग होगी। उन्होंने कहा, ऐसा नहीं है। यहाँ मजदूरों का संगठन इतना मजबूत है कि औद्योगिक क्षेत्र के सभी प्रतिनिधियों ने अपनी-अपनी पार्टी को बोलकर रखा है कि श्रमिकों के सवाल पर आप सचेतक जारी मत कीजिए। आप ह्विप जारी करेंगे तो हम मानेंगे ही, यह गारण्टी नहीं। ह्विप जारी किया जाय और उसका उल्लंघन हो, फिर अनुशासन की कार्यवाही करनी पड़े, इसके बजाय यह परम्परा डाली गई कि श्रमिकों के सवाल पर डेमोक्रेटिक और रिपब्लिकन दोनों पार्टियाँ ह्विप जारी नहीं करेंगी। वहाँ हर एक प्रतिनिधि को अपनी-अपनी इच्छा या अपने-अपने आश्वासन के अनुसार वोट देने का अधिकार रहता है और इसके कारण, पार्लियामेंट में, जिसको 'कांग्रेस' कहा जाता है, जब श्रमिकों के प्रश्न पर वोटिंग होती है तो विचित्र दृश्य दिखाई देता है। डेमोक्रेटिक पार्टी और रिपब्लिकन पार्टी, दोनों के वोट श्रमिकों के पक्ष और विपक्ष, दोनों में पड़ते हैं। दोनों पार्टियों के लोग कुछ पक्ष में, कुछ विपक्ष में दिखाई देते हैं। क्योंकि मजदूरों की शक्ति के कारण दोनों पार्टियों के नेताओं को उनके सदस्यों ने कहा है कि आप ह्विप मत लगाइए, हम मानेंगे ही, इसकी गारण्टी नहीं।

केवल हिन्दुस्थान के राजनीतिज्ञ सम्पूर्ण दुनिया को इस कूपमण्डूक दृष्टि से देखते और सोचते हैं कि बगैर राजनीतिक दल के मजदूर संगठनों का क्या होगा? उन्हें अमेरिका के सबसे शक्तिशाली ट्रेड यूनियन आन्दोलन का अध्ययन करना चाहिए। उनके समान शक्तिशाली बनने की हम भी कोशिश करें। यह चल नहीं सकता, हो नहीं सकता, ऐसा समझने की आवश्यकता नहीं।

हमारे यहाँ यह कहा जाता है कि एम० पी० और एम० एल० ए० हमारे साथ नहीं होंगे तो हमारा क्या होगा। यह हमारे लिए सोचने

की बात नहीं है। यह तो एम० पी० और एम० एल० ए० के सोचने की बात है कि मजदूर उनके साथ नहीं होगा तो अगले चुनाव में उनका क्या होगा ? कौन किसका सहारा है ? आप उनका सहारा हैं या वे आपके सहारे हैं ? जरा यह विचार करें। मैं आपको नाम लेकर बताना नहीं चाहता। लेकिन यहाँ कुछ ऐसे भुक्तभोगी लोग बैठे हुए हैं कि जिनको उनके मित्रों ने कहा कि पहले यह लिखकर लाइए कि भारतीय मजदूर संघ हमारी मजदूर शाखा है, तब हम आपकी सहायता करेंगे। यह लिखकर न देते हुए अन्यान्य पार्टियों के नेताओं के साथ बात करके उनकी सहायता लेकर हमने मामले सुलझाए। जहाँ अपने ही मित्रों ने कहा कि ऐसा लिखकर लाएँ और अपने लोगों ने कहा कि हम लिखकर नहीं देते, वहाँ जिनके बारे में सोचा गया था कि ये तो हमारे दुश्मन हैं, ऐसी पार्टी के लोगों ने भी हमारा काम किया; क्योंकि उनको भी लालच हुआ कि इनके यदि कुछ वोट मिलते हैं, शत-प्रतिशत नहीं तो चालीस प्रतिशत भी यदि मजदूरों के वोट मिलते हैं तो हमारा लाभ ही होगा। वे तो आपके बड़े याचक हैं और आप अपने ही दुःख से मर रहे हैं कि हमारा क्या होगा। उनका दुःख तो आपसे भी ज्यादा है यानी आपको यदि इन्फ्लुएंजा और मलेरिया का रोग होगा तो वे तो कैंसर और टी० बी० से पीड़ित हैं। आप काहे के लिए ज्यादा चिन्ता करते हैं ? वास्तव में विचार करने का विषय यह है कि अपने सिद्धान्त क्या हैं ? हमारे जीवन-मूल्य क्या हैं ?

अपने देश में एक ऐसे सन्त हो गए हैं जिनको बादशाह अकबर ने बुलाया था। उस सन्त ने कहा कि मैं नहीं आता—

आवत जात पन्हैया टूटें, बिसरि जाय हरि नाम।

आते-जाते मेरी चप्पल टूटती हैं और भगवान का नाम भी भूल जाता है। मैं तुम्हारे पास नहीं आता, आना है तो मेरे पास आओ। वे नहीं गए अकबर के पास। हम लोग 'पागल' लोगों का ही स्मरण कर रहे हैं न ! सन्त तुकाराम का भी एक ऐसा उदाहरण है। उन्हें राजा ने बुलाया था। यहाँ इस ताक में रहते हैं कि मिनिस्टर अपने को बुलाये, और वह बुलाता हीं नहीं। लेकिन शिवाजी राजा ने उनके लिए पालकी भेजी तो उन्होंने कहा—

तुम्हा यासी यम्या यतो निया याकाय। व्यर्थ शीणा है चालना चा॥

"तुम्हारे पास आकर हमको क्या लाभ है ? फिजूल चलने का कष्ट होगा, मैं यह कष्ट नहीं उठाना चाहता।" तीसरा एक उदाहरण है सिकन्दर बादशाह के समय का। डायजेनिस नाम के एक बड़े दार्शनिक थे। वे हमेशा हौज में बैठकर सूर्य-स्नान करते थे। सिकन्दर ने उनका नाम सुना तो उसने यह सोचा कि उसके राज्य में दुनिया का सर्वश्रेष्ठ दार्शनिक है, यह उसका बड़प्पन है, इसलिए उनको सिकन्दर के दरबार में आना चाहिए। राजा के दूत उन्हें बुलाने गए तो उन्होंने कहा कि "मैं नहीं आता। मैं तो हमेशा हौज में बैठकर सूर्य-स्नान करता हूँ। राजदरबार में जाने से यह क्रम टूट जाएगा।" विश्वविजयी सिकन्दर यह सुनकर पहले तो गुस्सा हुआ। फिर सोचा कि दार्शनिक ऐसे ही पागल होते हैं, चलो हम ही उसको मिलने चलते हैं। डायजेनिस को बताया गया कि सिकन्दर बादशाह खुद आ रहे हैं। बोले, "आने दो, मैं क्या उसको रोक सकता हूँ ?" वह बादशाह सिकन्दर का स्वागत करने के लिए सामने भी नहीं गए। आखिर सिकन्दर उनके यहाँ सुबह पहुँच गया। उस समय सुबह का सूरज ऊपर आया था। सूरज की किरणें वहाँ आ रही थीं। 'बादशाह आ गए, बादशाह आ गए' का शोर मचा, फिर भी वे आराम से लेटे रहे, उठे नहीं। बादशाह की तरफ देखा भी नहीं। अब लोगों को यह देखकर बड़ा अजीब-सा लगा कि दुनिया का बादशाह आया है और उन्होंने उसकी तरफ देखा भी नहीं। बादशाह ने बोलना शुरू किया कि "साहब, मैं आ गया हूँ। मैं एलेकजेंडर (सिकन्दर) हूँ।" वे बोले नहीं। केवल 'हाँ' सूचक सिर हिलाया। उस ओर देखा भी नहीं। स्मित-हास्य भी नहीं किया। फिर सिकन्दर ने कहा कि "मुझे इसका बड़ा गर्व है कि आपके जैसे दुनिया के सर्वश्रेष्ठ दार्शनिक मेरे प्रजाजन हैं।" फिर भी वे कुछ नहीं बोले। बादशाह बोलता रहा, वे चुप रहे। अकेला आदमी कितना बोलता। आखिर में सिकन्दर ने कहा, "मैं आपसे बड़ा प्रसन्न हूँ और इस दुनिया में ऐसी कोई चीज नहीं, जो मैं आपको नहीं दे सकता। आप दुनिया की कोई भी चीज मुझसे माँग लीजिए। मैं आपको दे दूंगा।" तब डायजेनिस ने सिकन्दर की तरफ थोड़ा देखकर स्मित-हास्य किया और कहा कि, "बादशाह, मैं जो माँगूंगा आप देंगे ?" वे बोले, "हाँ, मैं दूंगा।" डायजेनिस ने कहा कि "आपके शायद ख्याल में नहीं है कि आपकी छाया मेरे शरीर पर आ

रही है। इसके कारण मेरा सूर्य-स्नान नहीं हो पा रहा है। आप एक ही बात कीजिए कि जरा एक ओर हट जाइए ताकि सूर्य की किरण सीधे मेरे शरीर पर आ जाए।" एक ओर दुनिया का बादशाह कह रहा है कि मुझसे कुछ माँग लीजिए और दूसरी ओर यह आदमी कह रहा है कि जरा अलग हट जाइए ताकि सूर्य की किरण सीधे मेरे शरीर पर आ सके।

एक उदाहरण ऐसा है कि किसी परतन्त्र देश के लोगों को किसी ने अपना खून-पसीना एक करते हुए जाग्रत किया, संगठित किया। उन्हें राष्ट्रपिता (Father of the nation) मानने लगे। जब साम्राज्यवाद के खिलाफ प्रत्यक्ष लड़ने का मौका आया तो यह सोचकर कि इस लड़ाई के मौके पर मैं सेनापतित्व नहीं कर सकता, नेतृत्व किसी अच्छे सेनापति को सौंप दिया और स्वयं सैनिक वर्दी पहनकर, रायफल हाथ में लेकर एक सैनिक के नाते उसके सामने खड़े हो गए। ये दोनों जने थे इटली के जोसेफ मेजिनी और गैरी वाल्डी।

जार्ज वाशिंगटन के बारे में भी एक उदाहरण है। वाशिंगटन अमरीकी आजादी के योद्धा थे। युद्ध के समय कुछ लोगों ने उसका विरोध किया। लेकिन जब युद्ध समाप्त हुआ तो वाशिंगटन एकमेव नेता के रूप में उभरे। उस समय उनका कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं था। यदि उन्होंने स्वयं को राष्ट्रपति घोषित कर दिया होता तो भी किसी को कोई आपत्ति न होती। किन्तु उन्होंने ऐसा न करके आम चुनाव कराये और चुनाव जीतकर अमरीका के प्रथम निर्वाचित राष्ट्रपति हुए। यह उचित ही था। किन्तु एक बात ध्यान देने की है कि अमरीकी युद्ध के आखिरी चरण में उनके कुछ राजनीतिक प्रतिद्वन्द्वियों ने ईर्ष्यावश युद्ध प्रयत्नों को अन्तर्ध्वंस करने का प्रयास किया। अन्तर्ध्वंस के इस समाचार से उनके समर्थक सैनिक चिढ़ गए। वे वाशिंगटन से मिले और कहा कि, "विरोधी यह जानते हैं कि विजय अवश्यम्भावी है। इसलिए आपकी छवि बिगाड़ने के लिए वे युद्ध प्रयासों को पलीता लगाना चाहते हैं। आप प्रधान सेनापति हैं और इस समय सेना ही एकमात्र शक्ति केन्द्र है। हम आपके लैफ्टीनेंट हैं। आपको हम इस देश का अधिनायक घोषित करते हैं।" किन्तु वाशिंगटन ने कह दिया, "नहीं, यह मुझे स्वीकार नहीं है।" युद्ध की समाप्ति के बाद उन्होंने संविधान तैयार करने के लिए एक समिति का

गठन किया। फिर संविधान के अन्तर्गत हुए चुनाव के द्वारा जन-समर्थन के आधार पर वे अमरीका के प्रथम निर्वाचित राष्ट्रपति हुए।

प्रश्न—ज्वाइण्ट कंसलटेटिव मशीनरी में प्रवेश करने के सन्दर्भ में आपके क्या विचार हैं ?

उत्तर—ज्वाइण्ट कंसलटेटिव मशीनरी (J.C.M.) का जिस समय निर्माण हुआ उसी समय हम लोगों ने उस मशीनरी में हिस्सा लेने जा रहे कुछ लोगों से बातचीत की थी। उनसे कहा था कि आप इस मशीनरी में किसलिए जा रहे हैं। इससे कुछ लाभ नहीं होगा। जुलाई १९६० की आम हड़ताल हो चुकी थी। उसके पश्चात् श्री गुलजारी लाल नन्दा का वक्तव्य आया था कि केन्द्रीय कर्मचारियों की हड़ताल का अधिकार हम छीनना चाहते हैं और उसके बजाए हम उनको ज्वाइण्ट कंसलटेटिव मशीनरी देना चाहते हैं। उस समय हम लोगों की एक भी यूनियन केन्द्रीय सरकारी क्षेत्र में नहीं थी। भारतीय मजदूर संघ छोटा था। फिर भी हम लोगों ने अपनी भूमिका स्पष्ट की कि हड़ताल का अधिकार छीनना यह अलोकतान्त्रिक कदम होगा। हाँ, हम राष्ट्रवादी हैं। राष्ट्रवादी होने के कारण हम यह नहीं चाहते कि उत्पादन वृद्धि में बाधा आए या जनसेवाएँ रुक जाएँ। लेकिन काम करने के अधिकार को जिस प्रकार हम एक बुनियादी हक मानते हैं, उसी प्रकार हड़ताल के अधिकार को भी हम एक बुनियादी हक मानते हैं। हाँ, यह ठीक है कि कोई भी अधिकार सम्पूर्ण (Absolute) नहीं है। जिस प्रकार बुनियादी अधिकार पर कई अंकुश (Restraints) लाए जाते हैं, वैसे ही इस पर भी अंकुश आने चाहिएँ, यह हम समझ सकते हैं। लेकिन यह हक छीन लेना लोकतन्त्र के और मजदूरों के खिलाफ होगा। हड़ताल का हक छीनने के बजाय यह मजदूर और राष्ट्र के हित में होगा कि सरकार ऐसी कुछ व्यवस्था विकसित करे जिसके कारण हड़ताल अनावश्यक बात हो जाये। अपनी शब्द-रचना उस समय ऐसी थी—"The strike should become superfluous." यह भूमिका हम लोगों ने उस समय स्पष्ट की थी। ज्वाइण्ट कंसलटेटिव मशीनरी बनी तो उसमें जाने की इच्छा तब के सभी नेताओं की थी। हम लोगों ने उसका यह भविष्य बताया था कि इस व्यवस्था (मशीनरी) से केन्द्रीय सरकारी कर्मचारियों की कोई भी अखिल

भारतीय महत्त्वपूर्ण माँग पूरी नहीं हो सकती।

सरकार के मन में उस समय इतना ही विचार था कि यह मशीनरी निर्माण होने के कारण एक तो देश और विदेश में यह प्रचार होगा कि भारत सरकार एक बहुत प्रगमनशील सरकार है। साथ ही विदेशों को यह भी बता सकेंगे कि हमने अपने सरकारी कर्मचारियों के साथ सलाह-मशविरा करते हुए कारोबार चलाया है, हम भी प्रगतिशील (Progressive) हैं। दूसरी बात जो हमने उस समय कही नहीं, किन्तु हमारे मन में यह आशंका थी कि ऐसी मशीनरी में जाने के कारण कहीं इन लोगों की आज की क्रान्तिकारी भावना (Revolutionary zeal) धीरे-धीरे समाप्त न हो जाये। उस समय यह बात बोलना उचित नहीं था।

जब हमने कहा कि आप किसलिए कंसलटेटिव मशीनरी में जा रहे हैं तो लोगों को अच्छा नहीं लगा, खास कर दादा घोष के साथ उस समय हमारी बड़ी विस्तृत चर्चा हुई थी। उन्होंने हमको पूछा कि आप कंसलटेटिव मशीनरी में जाने के विरोध में क्यों हैं? तो हमने उनको कहा कि यह ज्वाइण्ट कंसलटेटिव मशीनरी कर्मचारियों के हित में कोई भी अच्छा काम कर ही नहीं सकती। उन्होंने कहा, क्यों नहीं कर सकती? यह ह्विटले काउंसिल के मॉडल पर है और ग्रेट ब्रिटेन की ह्विटले काउंसिल बहुत प्रभावी है। हमने कहा कि ग्रेट ब्रिटेन की ह्विटले काउंसिल प्रभावी है लेकिन आपकी जे० सी० एम० प्रभावी होने वाली नहीं है। इसका कारण बताते हुए हमने कहा कि जे० सी० एम० और ह्विटले काउंसिल में एक प्रमुख अन्तर है। यह ठीक है कि दोनों की रचना समान है। माने हर स्तर पर उद्योगों के अलग-अलग विभाग के प्रशासन के और कर्मचारियों के प्रतिनिधि एकत्रित आकर सलाह-मशविरा करें, यह समानता तो है। इस स्ट्रक्चरल समानता के साथ-साथ प्रशासन और कर्मचारियों में यदि किसी बात पर मतभेद हो जाता है और उसकी कोई सुलझन नहीं निकलती तो आर्बिट्रेशन को मामला भेजना चाहिए, यह समानता भी है। ये बातें दोनों में समान हैं। किन्तु इसके बाद बहुत बड़ा और महत्त्वपूर्ण अन्तर आता है। ग्रेट ब्रिटेन की ह्विटले काउंसिल के संविधान में ऐसा है कि यदि कोई मामला आर्बिट्रेशन को सौंप दिया जाता है तो आर्बिट्रेशन का अवार्ड प्रशासन अर्थात् सरकार व कर्मचारियों—दोनों के लिए अन्तिम

एवं मान्य (Final and binding) रहेगा। ह्विटले काउंसिल की इस रचना के अनुसार हमारे यहाँ आर्बिट्रेशन के निर्णय को अन्तिम एवं मान्य नहीं रखा गया। इस कारण आर्बिट्रेशन का अवार्ड भले ही आ जाये, उसका क्रियान्वयन करना या न करना उसको ठण्डे बस्ते (Cold storage) में रख देना, उसमें चाहे जो परिवर्तन (Modification) करना या अस्वीकार (Reject) करना आदि मनमानी सरकार कर सकती है। इसके कारण ह्विटले काउंसिल जिस प्रकार फलदायी और परिणामकारक हुई, जे० सी० एम० वैसी परिणामकारक नहीं हो सकती।

किन्तु उस समय हमारा काम बहुत कम और दुर्बल था। इसके कारण हमारी बात मानने के लिए कोई तैयार नहीं था। वैसे भी प्रतिष्ठा शक्ति की नहीं थी और फिर उसमें जाने के लिए लोग बहुत ललचा रहे थे। इसके कारण जे० सी० एम० की वह मशीनरी शुरू हो गई। वह मशीनरी शुरू होने के पश्चात् हमारे मन में जो आशंका थी वह धीरे-धीरे सही होने लगी कि एक बार मशीनरी में गए, वहाँ ऑफिसर्स और बड़े लोगों के साथ चाय-पान होना शुरू हो गया तो धीरे-धीरे नेता लोग कर्मचारी और कार्यकर्ताओं से कटने लगे। इसी में अपना स्टेटस और प्रेस्टिज देखने लगे और फिर विचार आया कि हर प्रकार से यह प्रेस्टिज बनाए रखना चाहिए। कोई भी अखिल भारतीय स्तर का महत्त्वपूर्ण प्रश्न जे० सी० एम० से हल नहीं हो सका। जे० सी० एम० के माध्यम से कोई महत्त्वपूर्ण निर्णय हुए हों, ऐसा अभी तक नहीं हुआ। यहाँ तक कि यह जो बोनस वगैरह की बात थी उसकी भी जे० सी० एम० के माध्यम से घोषणा नहीं हुई। व्यवस्था पहले हो गई फिर वहाँ घोषणा हुई। पूरी बातचीत जे० सी० एम० के बाहर हुई। इसी के कारण जे० सी० एम० में हिस्सा लेने वाले लोगों को भी महत्त्वपूर्ण माँगों की पूर्ति के लिए आम हड़ताल पर जाना पड़ा। जैसे १९६० के सितम्बर में सभी केन्द्रीय कर्मचारियों की यूनियनें हड़ताल पर गईं या १९७४ के मई महीने में जे० सी० एम० में शामिल सभी रेलवे यूनियनों को हड़ताल पर जाना पड़ा। इसका कारण यही था कि जे० सी० एम० पूरी तरह कारगर नहीं है। हम लोग जे० सी० एम० को महत्त्वपूर्ण नहीं मानते। किन्तु यह हम अवश्य मानते हैं कि जे० सी० एम० में हमारे जाने से लाभ तो नहीं

होगा, लेकिन आज जो वहाँ हिस्सा ले रहे हैं वे लोग तरह-तरह से मजदूरों के साथ जो विश्वासघात कर रहे हैं उसे रोका जा सकेगा। मैं सारे उदाहरण यहाँ नहीं देना चाहता, क्योंकि कुछ डिपार्टमेण्ट की बात है। किन्तु यह सच है कि मशीनरी में शामिल लोग मजदूरों के साथ विश्वासघात कर रहे हैं। अन्तरिम रिलीफ और बाकी प्रश्नों पर भी ऐसा ही अनुभव आया। इसलिए यदि हमारे लोग वहाँ जाते हैं तो ऐसा बिल्कुल नहीं है कि जाने से कोई महत्त्वपूर्ण काम कर सकेंगे, न वे कर सके हैं न हम कर सकेंगे। लेकिन एक बात होगी कि वहाँ जाने के कारण कुछ काम न करते हुए भी वे लोग जो रौब दिखाते हैं कि अरे साहब, हम जे० सी० एम० में हैं और ये जे० सी० एम० में नहीं हैं—इस कारण हमारे कुछ लोगों में हीन-भाव आता है, हम सोचने लगते हैं कि जैसे कोई महत्त्वपूर्ण बात हमारे हाथ से निकल रही है—उनका यह रौब कसना थोड़ा कम हो जायेगा। किन्तु यह कोई खास महत्त्वपूर्ण बात नहीं है। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि मशीनरी में शामिल होने से वहाँ आपकी उपस्थिति के कारण कर्मचारियों के साथ विश्वासघात करने का जो गोरखधन्धा कुछ पेशेवर नेताओं ने चला रखा है, उस पर रोक लगा सकेंगे, मजदूरों के हितों की निगरानी कर सकेंगे। इस दृष्टि से आपकी उपस्थिति वहाँ रहे, यह जरूरी है। सब कुछ धीरे-धीरे (In due course) होने वाला है। इसमें चिन्ता की बात नहीं है। इतना ही है कि आप अभी से यदि प्रचार करेंगे कि हम लोग जे० सी० एम० में जाएँगे तो क्या-क्या पराक्रम करने वाले हैं तो बाद में आपको तकलीफ होगी, क्योंकि आप भी कोई बहादुरी नहीं दिखा सकते। इसलिए आप सीधे यही बताइये और ज्यादा इम्प्रेशन जमाने की कोशिश मत कीजिए। लोगों को इतना ही बताइये कि जे० सी० एम० एक निकम्मी बात है, निरुपयोगी है। फिर भी हमारे वहाँ जाने के कारण एक काम होगा कि आज मजदूरों के साथ नेता लोग विश्वासघात करते हैं उस विश्वासघात पर हम रुकावट लाएँगे, निगरानी करने (Watch dog) का काम करेंगे। इतना बताइये, बहुत ज्यादा आज मत बताइए। क्योंकि जे० सी० एम० के द्वारा कोई भी, कुछ भी महत्त्वपूर्ण बात हासिल नहीं की जा सकती।

प्रश्न—२६ सितम्बर, १९८४ की हड़ताल स्थगित करके हमने मजदूर वर्ग और इस संगठन को क्या लाभ पहुँचाया ? इसी से सम्बन्धित दूसरा प्रश्न है। केवल बातचीत के लिए हमें सरकार ने बुलाया, इस पर खुश होकर हमने हड़ताल स्थगित की तो पत्र देकर भी बातचीत हो सकती थी। ऐसी स्थिति में हड़ताल का आवाहन देने का क्या औचित्य था ?

प्रश्न—२६-९-१९८४ की हड़ताल बगैर कुछ हासिल किए केवल बातचीत के नाम पर स्थगित करने से हममें और अन्य संगठनों में क्या अन्तर रहा ?

उत्तर—२६ सितम्बर की हड़ताल के बारे में वैसे तो सम्बन्धित सब लोगों को परिपत्र भेजे गए जिसमें सूचना दी गई। जिन्हें सूचना दी गई उनमें फेडरेशंस, डिफेंस, रेलवेज, पी० एण्ड टी० और कान्फेडरेशन के अन्तर्गत बाकी भी छोटी-बड़ी यूनियनें आती हैं, जिसमें केन्द्रीय सचिवालय, दिल्ली का भी स्थान आता है। इन चारों कान्फेडरेशन की एक बैठक हुई जिसमें परिस्थिति का विचार किया गया और सबने सोच-समझकर यह निर्णय किया कि कुछ माँगों के लिए २६ सितम्बर को सांकेतिक हड़ताल करेंगे। हड़ताल करने की घोषणा भी की। उसके पश्चात् अपने कार्यकर्ताओं और पदाधिकारियों की हलचल बहुत जोरों से शुरू हुई। बहुत प्रयास हुआ। इस समय जितना प्रयास हुआ, इसके पहले इन यूनियनों द्वारा इतना व्यापक प्रयास नहीं हुआ। जगह-जगह जो कार्यक्रम हुए वे भी बहुत अच्छे हुए। जैसे ही आप लोगों ने हड़ताल की घोषणा की, वैसे ही अन्य फेडरेशंस को भी सोचना पड़ा और उसके पश्चात् ऑल इण्डिया रेलवेमेंस फेडरेशन ने घोषणा की कि वे २८ सितम्बर से स्वतन्त्र रूप से अलग से अनिश्चितकालीन हड़ताल पर जाने वाले हैं। डिफेंस में कम्युनिस्ट यूनियन ने भी २८ तारीख की सांकेतिक हड़ताल की घोषणा की। पी० एण्ड टी० के पदाधिकारी अपने यहाँ के पी० एण्ड टी० फेडरेशन के दफ्तर पर हर दिन चक्कर काटने लगे कि आपका हमारा कुछ समझौता होना चाहिए। यानी आपकी घोषणा के कारण बाकी लोगों में, अलग-अलग खेमों में बहुत हलचल हो गई। इधर आपका भी मोबिलाइजेशन बहुत हुआ और यह इतनी औचित्यपूर्ण सामयिक बात थी कि अन्य यनियनों

के सदस्यों पर भी इसका प्रभाव हुआ जिसके कारण कई स्थानों पर आपका जो धरना और १४ सितम्बर का कार्यक्रम था, इसमें अन्य यूनियनों के लोग भी शामिल हुए। कई जगह तो ऐसे भी लोग शामिल हुए जिन्होंने कहा कि भाई, हम शायद आपके साथ हड़ताल पर जायेंगे कि नहीं जायेंगे, यह तो नहीं कह सकते, लेकिन १४ सितम्बर के और धरने के कार्यक्रम में हम आपके साथ रहेंगे। और वे लोग शामिल हुए।

इन सब बातों के समाचार सरकार के पास बराबर पहुँचते थे। इसके कारण २० तारीख को श्रम मन्त्रालय ने बीचबचाव (Intervene) और कांसिलियेशन करने का सोचा। अपने जो नोटिस गए थे वे सब नोटिस सेण्ट्रल चीफ लेबर कमिश्नर को जाने चाहिए थे किन्तु कई नोटिस वहाँ नहीं गए, जैसे रेलवे ने अपने नोटिस रीजनल लेबर कमिश्नर को भेजे थे। जो नोटिस जिसके पास जाता है वही मध्यस्थता कर सकता है। अतएव कुछ रीजनल लेबर कमिश्नरों ने रेलवे के बारे में मध्यस्थता शुरू भी कर दी थी, जिसमें पश्चिम रेलवे आती है। किन्तु इसके कारण फैसला बदलने की आवश्यकता नहीं थी। डिफेन्स ने भी अपने सभी नोटिस चीफ लेबर कमिश्नर के पास नहीं भेजे। पी० एण्ड टी० ने चीफ लेबर कमिश्नर के पास भेजे। श्रम मन्त्रालय सभी बातों पर निगाह रख रहा था। उसने हम लोगों को कहा कि आपकी माँग तो समान है, चाहे पी० एण्ड टी० हो, कान्फ़ेडरेशन हो, डिफेंस हो, रेलवे हो। इसलिए नियम के मुताबिक जिनका नोटिस हमारे पास है उनका कांसीलियेशन हम शुरू कर सकते हैं। समान माँग के कारण उसका जो भला-बुरा परिणाम होगा, वह सब पर लागू हो जायेगा।

२२ सितम्बर को यह इण्टरवेंशन कांसिलियेशन शुरू हुआ जिसमें अपने पठेलाजी और सुन्दरदास जी गए थे। वहाँ के भी दो जिम्मेदार डाइरेक्टर आए थे। यह जो पहली मीटिंग हुई उसके बाद उन्होंने कहा कि सभी मामलों पर तीन दिन के अन्दर उनका फैसला होना तत्त्वत: असम्भव (Physically impossible) है, अतएव हमारी इच्छा है कि आम सांकेतिक हड़ताल की बात समाप्त कर देना चाहिए। हमें मिनिस्ट्री ने लिखकर दिया कि "हम आपसे अनुरोध करते हैं कि आप २६ सितम्बर को सांकेतिक हड़ताल पर जाने का इरादा समाप्त कर

दें" (We appeal to you to drop to go on token strike on September 26)। इसके बाद हम लोग इस अनुरोध पर विचार करने के लिए एकत्र हुए। यह अपना घरेलू और पारिवारिक एकत्रीकरण है, इसलिए यहाँ सभी बातें स्पष्ट रूप से बोलने में बिल्कुल आपत्ति नहीं। वास्तव में जब हम लोग विचार करने बैठे तो उस समय इसमें क्या कठिनाइयाँ आ सकती हैं, इसका हमें अन्दाजा था।

इसके पहले भी कुछ घटनाएँ हुईं। जैसे जगह-जगह लाभांश की घोषणा (Bonus declaration) हुई थी। रेलवे, पी० एण्ड टी० और अन्य लोगों के लिए बोनस घोषित हुआ था, यद्यपि यह उत्पादक लाभांश (Productive bonus) था और उसकी राशि अपर्याप्त प्रतीत होती थी। फिर भी यह सच था कि बोनस की घोषणा हुई थी। अपने ही बी० पी० डी० ई० एफ० के पत्र-व्यवहार के दौरान सरकार ने अपने फेडरेशन को आश्वासन दिया था कि ई० डी० स्टाफ के लिए एक एक-सदस्यीय समिति नियुक्त करेगी जिसको अन्तरिम राहत और डी० ए० का भी मामला सौंपा जायेगा। हम जानते हैं कि ई० डी० स्टाफ की बहुत बड़ी संख्या है।

ऐसी स्थिति में जब श्रम मन्त्रालय की अपील अपने पास आई तो उस पर विचार करना पड़ा। हमारे केन्द्रीय सरकारी कर्मचारियों के कार्यकर्ता शायद इस बात की जानकारी नहीं रखते कि 'अपील' का मतलब क्या होता है? १५ अगस्त, १९४७ से आज तक वामपन्थी लोगों के नेतृत्व में केन्द्रीय सरकारी कर्मचारियों की जितनी भी हड़तालें हुईं, उनकी किसी भी हड़ताल में श्रम मन्त्रालय ने इण्टरवेंशन और कांसिलियेशन नहीं किया। इसके कारण कांसिलियेशन वाला मामला कुछ लोग समझते नहीं। वास्तव में १९६० की जुलाई में जो हड़ताल हुई थी उस समय फिरोज गांधी आदि ने मध्यस्थता के प्रयास तो किये थे लेकिन श्रम मन्त्रालय का इण्टरवेंशन नहीं हुआ। १९६८ के समय किसी तरह मध्यस्थता का प्रयास कुछ लोगों ने किया, लेकिन उस प्रयास के समय ही गिरफ्तारी वगैरह शुरू हो गई। वहाँ भी श्रम मन्त्रालय का इण्टरवेंशन या कांसिलियेशन नहीं था। १९७४ की ६ मई की रेलवे हड़ताल, जिसमें एक पार्टी के रूप में हम शामिल थे, उसमें वार्ता चल रही थी। किन्तु वार्ता के चलते हुए न तो श्रम मन्त्रालय ने इण्टरवेंशन किया, न कांसिलियेशन शुरू हुआ। जो

बातचीत चल रही थी उसे भी सरकार ने आधिकारिक नहीं माना, यह कहा कि वार्ता अनौपचारिक (Informal) है जिसका रेकार्ड नहीं रहेगा। किन्तु उस बातचीत के बीच में ही सरकार ने वार्ता में शामिल सभी प्रमुख लोगों को गिरफ्तार कर लिया। मात्र इतनी इज्जत उन्होंने उस वार्ता को दी थी। उन्होंने घोषित रूप में कहा कि वार्ता आधिकारिक (Official) नहीं है, अनौपचारिक (Unofficial) है। एक तरह से वह हड़ताल पहले ही शुरू हो गई। इन सभी घटनाओं को ध्यान में रखने की जरूरत है।

यह पहला ही मौका था कि भारतीय मजदूर संघ से सम्बन्धित केन्द्रीय सरकारी कर्मचारियों की फेडरेशंस एकत्रित आकर हड़ताल का आवाहन करती हैं और श्रम मन्त्रालय इण्टरवेंशन और कांसिलियेशन शुरू करते हुए आपको एक प्रतिष्ठा प्रदान करता है। इसका एक दूसरा भी महत्त्व (Significance) है। आप लोगों में से भी कितने लोगों को इसका ध्यान है, यह मैं नहीं जानता। केन्द्रीय सरकारी कर्मचारी क्षेत्र में इतने सालों से वामपंथी काम कर रहे हैं। उस क्षेत्र में सी० पी० आई०, सी० पी० एम० और सोशलिस्टों का काम बहुत पुराना है। यह आश्चर्य की बात है कि उनको कभी यह प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं हुई। हमसे हमारे कम्युनिस्ट मित्रों ने कहा कि उनको वास्तव में अलग-अलग इण्डस्ट्रीज का तो अनुभव था किन्तु यह जो एक व्यापक (Comprehensive) और सामूहिक (Collective) दृश्य है, वह उनके सामने पहली बार २६ सितम्बर के कारण आया। उन्होंने कहा कि पहली बार यह बात हमारे सामने सशक्त और प्रभावी ढंग से आई है कि भारतीय मजदूर संघ एक ऐसा अकेला केन्द्रीय श्रम संगठन है जिससे सम्बद्ध महासंघ (Affiliated federations) पी० एण्ड टी०, रेलवे और डिफेंस आदि केन्द्रीय सरकार के अन्यान्य क्षेत्रों में हैं।

इतने महासंघ केन्द्रीय सरकार के क्षेत्र में न ऐटक के हैं, न सीटू के और न हिन्द मजदूर सभा के। यह एक विशेष बात थी। यह तथ्य तो था ही, लेकिन यह किसी के ध्यान में नहीं आता था। वह सरकार के ध्यान में आया, कम्युनिस्ट-सोशलिस्टों के ध्यान में आया, केन्द्रीय सरकारी कर्मचारियों के ध्यान में आया। केन्द्रीय सरकार के क्षेत्र में इस तरह ज्यादा से ज्यादा सम्बद्ध महासंघ केवल भारतीय मजदूर

संघ के ही हैं, इस बात को मान्यता देना, यह केन्द्रीय हस्तक्षेप (Central Intervention) का अर्थ होता है। सेन्ट्रल इण्टरवेंशन केवल माँग के साथ जुड़ा हुआ नहीं है, केवल इण्टरवेंशन से माँग पूरी होने वाली है, ऐसा भी हम नहीं मानते। लेकिन हमारे सामने सवाल यह था कि प्रथम बार सरकार ने यह तथ्य माना—हमें मान्यता दी। इससे जनमानस में, कर्मचारियों के मन में, सरकारी अधिकारियों के मन में, कम्युनिस्टों और सोशलिस्टों के मन में यह बात एक प्रकार से सर्वज्ञात तथ्य हो गई कि केन्द्रीय सरकारी कर्मचारियों में सर्वव्यापी संगठन रखने वाला केवल भारतीय मजदूर संघ है।

यहाँ एक बात ध्यान देने की और है। अनुरोध (Appeal) को अस्वीकार कर देते हैं तो जैसे कुछ लोगों ने कहा कि साहब आखिर तक क्यों नहीं लड़े, शायद उनको पता नहीं कि कांसिलियेशन शुरू होने के बाद अवैध हुए बिना हड़ताल हो नहीं सकती। लेकिन यह महत्त्व की बात नहीं। यदि हमने हड़ताल करने का सोचा ही होता तो वैध-अवैध का सवाल नहीं था। ताकत के सहारे अवैध को वैध बनाया जा सकता है। वे भी तिकड़मबाजी से हजार सही-गलत बातें करते हैं। हमारा तो गलत कुछ नहीं था, सब सही था। तो वह बात नहीं थी। लेकिन टैक्निकल एडवाण्टेज, स्ट्राटेजिक एडवाण्टेज तो लेना ही चाहिए, खासकर जिनके साथ हमारा मुकाबला है, जैसे कम्युनिस्टों और सोशलिस्टों के साथ। केन्द्रीय श्रम मन्त्रालय की मध्यस्थता के कारण हमने उनसे अधिक अंक प्राप्त कर लिये (We have scored big point over them)।

मध्यस्थता के पहले हम लोगों से पूछा भी गया था कि इस विषय में आप कुछ सोचेंगे तो हम मध्यस्थता करेंगे, नहीं तो हमारी भी बेइज्जती हो जायेगी। हमने भी सोच-समझकर कहा कि मध्यस्थता तो कर सकते हैं लेकिन आप जो कह रहे हैं वह मानना या न मानना हमारे फेडरेशन के लोगों पर ही निर्भर होगा। इसलिए डिफेंस, पी० एण्ड टी०, रेलवे सभी के पदाधिकारियों की संयुक्त बैठक २० तारीख से दिल्ली में बुलाई गई थी ताकि समय पर यदि कुछ बात आए तो उसपर हम लोग विचार कर सकें।

मध्यस्थता की बात आने पर यही सोचा गया कि इसके कारण कुल मिलाकर भारतीय मजदूर संघ को लाभ और भारतीय मजदूर

संघ का नेतृत्व स्थापित होने से ही मजदूरों का आगे कल्याण हो सकता है। क्योंकि अपना काम तो केवल अपने सिद्धान्तों के अनुसार रहेगा। आगे का यह रास्ता प्रशस्त करने का कार्य श्रम मन्त्रालय की मध्यस्थता ने किया है और इस कारण आपकी धाक केन्द्रीय सरकारी क्षेत्र में बढ़ी है। कम्युनिस्ट, सोशलिस्ट भी आपका लोहा मानने लगे हैं। यह बहुत बड़ी बात हुई।

यह बात ठीक है कि नागपुर में बातचीत के दौरान यह आया था कि हम कभी भी हड़ताल वापस नहीं लेंगे। लेकिन कुल मिलाकर जब स्थिति में गुणात्मक परिवर्तन आ गया तो हमने यह निर्णय लिया। जब श्रम मन्त्रालय को फोन करके यह बताने का निर्णय किया गया कि हड़ताल 'समाप्त' (Drop) करना शब्द न स्वीकार करके हम हड़ताल को आगे बढ़ाने, 'विलम्बित' (Defer) करने की घोषणा कर सकते हैं तो उस समय मैंने वहाँ उपस्थित वरिष्ठ कार्यकर्ताओं से कहा था कि नागपुर का वायुमण्डल जिस तरह का बना था उसे देखते हुए आप अगर यह घोषणा करेंगे तो कई कार्यकर्ता सख्त नाराज हो जायेंगे। आपस की बातचीत में वहाँ का वायुमण्डल बहुत गरम हो गया था। किन्तु जब कोई बात सोचनी पड़ती है तो कुल मिलाकर ही सोचा जाता है—कर्मचारियों, मजदूरों और संस्था का अधिक से अधिक लाभ किसमें है। श्रम मन्त्रालय को सूचित करने के पूर्व कुछ वरिष्ठ कार्यकर्ताओं का नाम लेकर उनकी नाराजगी का उल्लेख भी मैंने किया था। यह आपके पदाधिकारी आपको बता सकते हैं। अपना नेतृत्व हवा में चलने वाला नहीं है। यद्यपि आपकी हमारी बार-बार, हर समय मुलाकात नहीं होती तो भी कहाँ क्या चल रहा है, कौन क्या सोच रहा है, हम इसकी खबर रखते हैं। इसलिए मैंने कहा था कि इस क्षेत्र में आपको थोड़ा कष्ट होने वाला है किन्तु कुल मिलाकर इसके कारण बहुत लाभ हुआ है। इस वार्ता से क्या होगा और माँगों का क्या होगा, केवल इतनी बात नहीं है। बात इससे बहुत भिन्न है। अब सरकार की मानसिकता भिन्न है। जहाँ हम कमजोर हैं वहाँ हमारी, अन्य लोगों की, सरकार की, मैनेजमेंट की मानसिकता भिन्न है।

यह स्वाभाविक है कि जब अखिल भारतीय स्तर पर कोई निर्णय करना पड़ता है तो कुल मिलाकर सोचते समय निर्णय यदि कमजोर

इकाई के अनुकूल रहा, तो जहाँ हमारी मजबूत इकाई है वह सोचेगी कि यह उसके लिए बहुत खराब पोजिशन में डालने वाला और इम्ब्रेसिग निर्णय हुआ है। और जब निर्णय मजबूत इकाई के अनुकूल होगा तो कमजोर इकाई वाले कहेंगे कि उनको हमने आफत में डाल दिया। दोनों प्रकार के कर्मचारी अपने अनुकूल अनुभव करें ऐसा कोई निर्णय नहीं हो सकता। अखिल भारतीय स्तर का जो निर्णय होगा वह एक-एक केन्द्र और इकाई का विचार करके नहीं, कुल मिलाकर विचार करके ही किया जा सकेगा। अखिल भारतीय स्तर का निर्णय प्रत्येक यूनिट का प्रत्येक कार्यकर्ता समझ सकेगा, यह भी आवश्यक नहीं है। एक उदाहरण देता हूँ पहाड़ी पर चढ़ने का। जब पहाड़ी पर चढ़ना शुरू करते हैं और इधर-उधर देखते हैं तो कुछ परिसर दृष्टि-पथ में आता है, जैसे-जैसे ऊपर चढ़ते हैं उससे ज्यादा परिसर हमारे दृष्टिपथ में आता है। जब पहाड़ी की चोटी पर पहुँचते हैं तो और भी ज्यादा परिसर हमारे दृष्टिपथ में आता है। ऐसा नहीं है कि उस समय हमारी आँख की रोशनी पहले से ज्यादा अच्छी हो जाती है। आँख की रोशनी वही रहती है, दृश्य स्पष्ट हो जाता है। इसी प्रकार काम करते-करते कार्यकर्ताओं की समझ और दृष्टि व्यापक एवं स्पष्ट होती जाती है। अब आपकी पोजीशन बन गई है। आपको प्रतिष्ठा (Prestige) प्राप्त हो गई है। इसका लाभ उठाकर केन्द्रीय कर्मचारियों के कल्याण का आगे का मार्ग प्रशस्त करना अब अधिक संभव होगा, जो आज तक संभव नहीं था। यह टेकनीकल स्ट्राटेजिकल लाभ हमें मिला है। २६ सितम्बर की हड़ताल के विषय में इतनी बात पर्याप्त है।

पूना के अपने अभ्यास वर्ग के उद्घाटन भाषण में मैंने एक बात कही थी। उसे पुनः स्मरण कराना चाहता हूँ। इसका सम्बन्ध २६ सितम्बर की हड़ताल वाले प्रकरण से नहीं है। हमेशा के लिए फिर से स्मरण रखें, इसलिए उसे दोहराता हूँ। उसमें मैंने यह कहा था कि हम समझ लें कि जहाँ ऑल इण्डिया फेडरेशन हैं वहाँ कोई भी निर्णय ऐसा नहीं हो सकता जो कि सभी शाखाओं के अनुकूल हो। मैं इसे दोहराना चाहता हूँ कि सभी शाखाओं के अनुकूल निर्णय होना असंभव है। उस कार्य में कम से कम दस-बारह साल लग सकते हैं। दस-बारह साल बाद हम ऐसे निर्णय ले सकेंगे जो सबके लिए अनुकूल

हों। इसका कारण यह है कि हमारे हर एक फेडरेशन में हालत ऐसी है कि कुछ केन्द्रों में हम शक्तिशाली हैं व कुछ केन्द्रों में कमजोर हैं। जहाँ हम मजबूत हैं वहाँ हमारी व अन्य लोगों की मानसिकता भिन्न है। मैनेजमेंट की चोटी पर से ऐसा भी परिसर दिखता है जो नीचे से नहीं दिखता। अतएव इकाई स्तर (Branch level) पर हर एक बात हम एकदम समझ सकेंगे, ऐसा नहीं है। लेकिन जैसा मैंने कल कहा कि हम केवल यूनियनबाज (Union minded) नहीं हैं, हम भारतीय मजदूर संघ के कार्यकर्ता हैं और उसके माध्यम से अप्रत्यक्ष रूप में हम यूनियन के कार्यकर्ता हैं। यदि हमारा यह भा० म० सं० मानस रहा तो चाहे हम कमजोर केन्द्र के हों चाहे मजबूत केन्द्र के, जब अपने प्रतिकूल निर्णय आयेंगे तो हम उस समय विचलित नहीं होंगे। समझ जायेंगे कि आगे का सोचकर कुछ लोगों के लिए तकलीफ देने वाला यह निर्णय हुआ है।

प्रत्येक संगठन में कुछ सिद्धान्त अपरिवर्तनीय होते हैं, बाकी व्यावहारिक। हम लोग अपने सिद्धान्तों के प्रकाश में सोचते हैं, और सोच-विचार करते हुए लोकतान्त्रिक ढंग से निर्णय करते हैं। सबके साथ बात करना आवश्यक है। अपनी बात समझाना एक स्वस्थ प्रक्रिया है। भारतीय मजदूर संघ कोई एक व्यक्ति या पाँच व्यक्ति या केवल कार्यकारिणी ही नहीं है। हम सब मिलकर ही भारतीय मजदूर संघ हैं।

प्रश्न—इस शिक्षण शिविर में भारतीय मजदूर संघ से सम्बन्धित यूनियनों के आम सदस्यों को आमन्त्रित क्यों नहीं किया गया? प्रमुख कार्यकर्ता ही शिक्षण शिविर में सम्मिलित होते हैं, ऐसा क्यों है?

उत्तर—यह प्रमुख कार्यकर्ताओं का ही सम्मेलन है और इसलिए आम सदस्यों को नहीं बुलाया गया, यह स्पष्ट है। किन्तु इस विषय में मात्र इतना ही बोलना पर्याप्त नहीं होगा। हम जानते हैं कि भारतीय मजदूर संघ एक परिवार है, लेकिन साथ ही यह व्यावहारिक बात भी हम जानते हैं कि अपना काम जगह-जगह बढ़ रहा है और नयी-नयी यूनियनें शुरू हो रही हैं व नये-नये सदस्य बन रहे हैं। एकदम नये सदस्य की मानसिकता भा० म० सं० की होगी, यह कहना बड़ा कठिन

है। अनुभव ऐसा है कि जहाँ नयी यूनियन शुरू होती है उसमें कहीं कुछ लोग इण्टक से आते हैं, कुछ ऐटक से आते हैं। वे अपनी पुरानी यूनियनों की मन:स्थिति को लेकर हमारी यूनियन में आते हैं। उनमें कई लोग ऐसे भी होते हैं जो शरीर से तो भारतीय मजदूर संघ में शामिल हो जाते हैं किन्तु उनका मन, उनके सोचने का ढंग सब कुछ वही पुराना होता है। इस प्रकार के लोग भारतीय मजदूर संघ के परिवार में आने के बाद पूरी तरह आत्मसात् हो जायँ, उनकी रीति-नीति और विचार का ढंग हम भी आत्मसात् करने का प्रयत्न करें। मानसिक दृष्टि से भारतीय मजदूर संघ के साथ जो लोग समरस नहीं हो सके हैं उनके बारे में ऐसा सोचा गया कि उन्हें अभी न बुलाया जाय। जो वास्तव में जिम्मेदार हैं, ऐसे प्रमुख कार्यकर्ताओं को यहाँ बुलाया गया है। इसे और अधिक स्पष्टता से कहा जाये तो रेलगाड़ी का उदाहरण अच्छा रहेगा। रेलगाड़ी में एक इंजिन होता है बाकी डिब्बे। सभी को बम्बई से दिल्ली जाना है। केवल बम्बई पहुँचना है यह सोचकर सब पैसेंजर उसमें नहीं बैठते। यद्यपि सभी एक ही ट्रेन में बैठे हुए होते हैं, लेकिन सभी यात्रियों का उद्देश्य बम्बई पहुँचना ही नहीं होता या वे यह नहीं सोचते कि उन्हें गाड़ी को बम्बई पहुँचाना है। लेकिन ड्राइवर और गार्ड का उद्देश्य एक ही रहता है कि गाड़ी को बम्बई पहुँचाना है। ट्रेन में बैठे हुए यात्रियों में कोई शादी के लिए जाते होंगे, कोई दोस्तों को मिलने जाते होंगे, कोई अपना पैसा वसूल करने जाते होंगे। सबका अपना अलग-अलग उद्देश्य होता है, लेकिन सभी एक ही ट्रेन में जा रहे होते हैं। एक ही गाड़ी में सवार लोगों का उद्देश्य एक नहीं होता, लेकिन गाड़ी के ड्राइवर व गार्ड का उद्देश्य एक ही होता है—बम्बई पहुँचना। वे गाड़ी में इसलिए नहीं जा रहे होते कि वहाँ कोई खरीदारी करनी है या कुछ बेचना है। उसी प्रकार संगठन की ट्रेन को अन्तिम गन्तव्य स्थान तक पहुँचाने का विशुद्ध ध्येय जिनके मन में है, ऐसे कार्यकर्ताओं को यहाँ बुलाया है। बाकी के लोग (पैसेंजर) भी ड्राइवर व गार्ड की पोजीशन में आ जायें, इसलिए अलग-अलग स्तर पर हम अभ्यास वर्ग लगाते हैं।

प्रश्न—यह कहा गया कि हमारा गन्तव्य स्थान मोक्ष है। किन्तु स्वामी विवेकानन्द ने कहा कि जब तक इस देश का कुत्ता भी भूखा

होगा, मैं मोक्ष की कामना नहीं करता। इसी प्रकार से राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के आद्य सरसंघचालक पूजनीय डॉ० हेडगेवार ने पूजनीय श्री गुरुजी की जीवन की दिशा बदल दी कि समाज का कार्य करो व मोक्ष की कामना छोड़ो। इन दोनों बातों का हम कैसे तालमेल बिठाते हैं ?

उत्तर—जिन महापुरुषों का नाम लिया गया है वे परम सुख की साधना करने वाले अत्यन्त श्रेष्ठ पुरुष हैं। ऐसे और भी महापुरुष हैं। इस प्रकार के श्रेष्ठ पुरुषों का यह कहना कि मैं जब तक लोगों का दुःख दूर नहीं करता या जब तक ध्येय सिद्ध नहीं होता, तब तक मुझे परमसुख भी नहीं चाहिए। यह उनके व्यक्तिगत बड़प्पन का परिचायक है। परम सुख के ध्येय या गन्तव्य स्थान में इस बात से कोई बाधा नहीं आती। इसमें इतना ही दिखाई देता है कि ऐसे लोग भी हैं कि यदि ध्येय सिद्ध न होता हो तो उन्हें परम सुख भी नहीं चाहिए। सन्त तुकाराम जी की यह वाणी बहुत प्रसिद्ध है—

नको मुक्ति, धनसम्पदा, संत संगति देयी सदा।

उन्होंने कहा कि मुझे केवल सन्त लोगों की संगति दीजिए, मैं मोक्ष नहीं चाहता। ऐसे श्रेष्ठ पुरुषों की अपने यहाँ कमी नहीं है जिनकी यह मान्यता रही है। लेकिन इस सन्दर्भ में इतना ध्यान में रखना जरूरी है कि तात्कालिक सुख का मन पर परिणाम होता है। इसलिए मन में यह विचार भी आ सकता है कि आज जो गड़बड़ करना है वह तो करने दीजिए, मोक्ष वगैरह की बात बाद में देखेंगे। ऐसे लोगों के लिए संट ने ठीक प्रार्थना बतायी—

'Lord, make me good but not yet.'

भगवान, मुझे अच्छा बनाओ, लेकिन तुरन्त मत बनाओ, थोड़ा रुक जाओ, मेरे और भी कुछ काम बाकी हैं। वह हो जाने के बाद मुझे अच्छा बनाओ। यह संट की बड़ी प्रसिद्ध प्रार्थना है। किन्तु जिन श्रेष्ठ महापुरुषों का उल्लेख किया गया, वे इतने श्रेष्ठ हैं कि वे परम सुख को भी नहीं चाहते। एक अच्छा कवि फ्रॉस्ट हुआ है। उसकी कविता जवाहरलाल जी हमेशा अपने टेबल पर रखते थे। उसने लिखा है—

Woods are lovely dark and deep,
But I have promises to keep,

Miles to go before I sleep,

And miles to go before I sleep.

स्वामी विवेकानन्द, डॉ० जी के व गुरुजी के इस तरह के उदाहरण हैं।

प्रश्न—हम लोग कार्यकर्ता निर्माण पर बहुत जोर देते हैं यह उचित ही है। किन्तु आजकल प्रचार का युग है और प्रभाव स्थापित करने के लिए प्रचार एक सशक्त माध्यम है। हमारा इधर दुर्लक्ष्य है। ऐसा क्यों?

उत्तर—कुछ कैलेण्डरों में चित्र की रचना ऐसी रहती है कि ऊपर किसी सुन्दर दृश्य का चित्रण और नीचे के पानी में उसका प्रतिबिम्ब। जैसे ऊपर ताजमहल और नीचे के पानी में ताजमहल का प्रतिबिम्ब होता है। कार्यकर्ता व कार्यक्षेत्र का भी ऐसा ही सम्बन्ध है। कार्यकर्ता का प्रतिबिम्ब भी कार्यक्षेत्र में आता है। जो अच्छा कलाकार होता है उसने ऊपर का ताजमहल देख लिया तो पानी में उसके प्रतिबिम्ब का सहज ही अनुमान वह लगा सकता है। या केवल पानी में प्रतिबिम्ब देखकर ऊपर का ताजमहल कैसा होगा, उसकी भी कल्पना वह कर सकता है। इसी प्रकार जो संगठन शास्त्र का जानकार आदमी है वह कार्यकर्ता को देखकर उसके कार्यक्षेत्र के गुण-दोष क्या हैं, यह समझ सकता है। यानी कार्यकर्ता को देखकर कार्यक्षेत्र का, और कार्यक्षेत्र को देखकर कार्यकर्ता के गुण-दोष का अनुमान लगाया जा सकता है। कार्यकर्ता को बिना देखे भी यदि कार्यक्षेत्र का दौरा किया तो कार्यकर्ता का स्वभाव क्या होगा, इसका अन्दाजा आ जाता है। इस तरह से कार्यकर्ता व कार्यक्षेत्र का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। जैसा कार्यकर्ता होगा उसी का प्रतिबिम्ब कार्यक्षेत्र में होता है।

कार्यकर्ताओं के बारे में जितना आग्रह भारतीय मजदूर संघ में है उतना शायद किसी भी केन्द्रीय श्रम संगठन में नहीं है। १९७७ में कोटा में भारतीय मजदूर संघ के कार्यकर्ताओं का एक स्वाध्याय वर्ग लगा था। उसमें इस विषय पर विचार सुनने के बाद सीटू से टूटकर आए एक सज्जन पूछने लगे कि कार्यकर्ता के बारे में आप लोग इतना आग्रह क्यों करते हैं। कार्यकर्ता तो सदा कार्यकर्ता ही रहता है। हमने कहा कि ऐसा नहीं है। अपने यहाँ का कार्यकर्ता अच्छा बना

रहे, सदैव इसका आग्रह रहता है। इस कारण कार्यक्षेत्र स्वतः अच्छा होता है। लेकिन इस सबके बावजूद व्यक्तियों का अपना-अपना स्वभाव होता है, अलग-अलग टेम्परामेंट होता है। हमारे एक अच्छे मित्र हैं। वे मजदूर संघ के नहीं हैं। अन्य क्षेत्र में काम करते हैं। नेता आदमी हैं। उनका अपना स्वभाव है। एकदम किसी को कुछ बोल देना और कहना कि मैं तो मुँहफट हूँ, जो मेरे दिल में है वही मेरे मुँह में है, मैं दोहरापन (Double dealing) नहीं जानता। ऐसे लोगों के मन में अनजाने में यह भावना रहती है कि मैं जो हूँ सो हूँ। मेरा उपयोग करना है तो कर लो, नहीं तो छोड़ दो। मुझमें कोई परिवर्तन कैसे हो सकता है। वे ठीक पायदान की तरह होते हैं। पायदान पर कभी-कभी ऐसा लिखा होता है, 'यूज मी' (Use me)। मैं जैसा हूँ वैसा मेरा उपयोग करो। पायदान कहता है कि मैं तो ऐसा ही रहने वाला हूँ। मेरे में कोई सुधार होने वाला नहीं है। यदि आपको उपयोग करना है तो कर लीजिए, नहीं करना है तो छोड़ दीजिए। ऐसा ही कभी-कभी अनजाने में बहुत प्रामाणिक होते हुए भी कुछ लोग कहते हैं। उनमें प्रामाणिकता का अभाव नहीं होता लेकिन मन में यह बना रहता है कि मेरा जो और जैसा स्वभाव है वह है, इसमें बदल नहीं आ सकता। वे यह नहीं समझते कि हम पायदान नहीं हैं।

इसमें दो तरह के लोग हमने देखे हैं। एक तो ऐसे हैं कि जो घोर आलसी होते हैं, किन्तु प्रामाणिक हैं, इसलिए कहते हैं कि काम करने की इच्छा नहीं है। इन लोगों का विचार तो छोड़ ही देना पड़ता है। उन्हें तो कभी कार्यकर्ता बनना ही नहीं है। फिर भी यह दुःख की बात है कि कार्यकर्ता प्रामाणिक होते हुए भी ऐसी बातें करते हैं। इसका कारण एक ही है कि वे बहुत ही सीधे और सरल स्वभाव के होते हैं। वे अपने अन्दर परिवर्तन लाने से केवल आलस्य के कारण इनकार करते हैं, ऐसा नहीं। उनके सोचने का एक अलग ढंग होता है। एक उदाहरण देता हूँ। हमारे एक मित्र हैं। हम दोनों मिलकर किसी कनिष्ठ कार्यकर्ता से बात करने गये। उसको समझाना था। मैं उसके साथ बात कर रहा था। मैं बोल रहा था, दूसरा आदमी जवाब दे रहा था। फिर मैं जो कुछ पूछता था तो वह बार-बार अपनी एक ही बात दोहरा देता था। कुछ लोगों की आदत होती है कि वे एक ही बात बार-बार बोलते हैं। उस कार्यकर्ता की भी वही आदत

थी। उसके तीन-चार बार एक ही बात बोलने के बाद भी मैं सुन रहा था। किन्तु मेरे मित्र का धैर्य टूट गया। उन्होंने कहा कि दत्तोपंत, इसके साथ बात करने में कोई अर्थ नहीं है, चलो। और फिर उसका नाम लेकर कहा कि "आप पहले दर्जे के मूर्ख हैं।" सारा मामला बिगड़ गया। हम घर वापस आ गए। घर आने के बाद मैंने उनसे कहा कि आपने उसको पहले दर्जे का मूर्ख क्यों कहा ? वे बोले, "दत्तोपंत, आप मुझे सिखा रहे हैं। मैं आपको अच्छी तरह जानता हूँ।" मैंने कहा कि, "क्या बात हुई ?" उसने कहा, "जो मेरे मन में है वही आपके मन में भी है। अन्तर मात्र इतना ही है, मैंने कह दिया कि वह मूर्ख है, आपने कहा नहीं !" फिर वे बोले, "बात यह है कि मैं स्पष्ट वक्ता हूँ, आप पाखण्डी हैं।" यह सुनने के बाद मैं उन्हें कैसे समझाता। मन में एक बौद्धिक वर्ग तैयार था, लेकिन जब उन्होंने कहा कि वे स्पष्ट वक्ता और मैं पाखण्डी हूँ, मेरा तो बौद्धिक वर्ग वैसे ही खत्म हो गया। मैं क्या बोलता ? ऐसे स्वभाव के लोग ऐसा सोचते हैं कि हमारे अन्दर तो अब परिवर्तन होने वाला नहीं। हम तो स्पष्ट वक्ता हैं। ऐसी स्थिति में उनका कोई इलाज ही नहीं रहता। यह बीमारी ही ऐसी है कि इसकी कोई दवा नहीं है।

कार्यकर्ता को स्वयं सोचना चाहिए कि यह ठीक है क्या ? यह स्वभाव एक बड़े अहंकार का विषय हो सकता है कि मैं बड़ा स्पष्ट वक्ता हूँ, किसी से डरता नहीं। कई लोग ऐसा भी कहते हैं कि "हम भी मनुष्य हैं, गुस्सा आना तो स्वाभाविक ही है।" अरे भाई, गुस्सा होना मनुष्य सुलभ स्वभाव होगा। मनुष्य हैं इस नाते यह सारी बातें आपके अन्दर आती हैं तो उसमें कोई आपत्ति और दोष नहीं, किन्तु फिर आपको यह आशा नहीं करनी चाहिए कि दस लोग आपका अनुसरण करें या दस लोग आपको नेता या कार्यकर्ता के रूप में स्वीकार करें। फिर आप वैसे ही रहिये जैसे बाकी के दस लोग रहते हैं। लेकिन यदि आप दस लोगों का नेतृत्व करना चाहते हैं तो फिर यह नहीं चलेगा कि यह तो मनुष्य स्वभाव सुलभ बात है। जे० कृष्णमूर्ति की एक कविता है। पहाड़ी की चोटी पर स्थित एक पेड़ का उल्लेख करते हुए वह कहते हैं—

Stand alone,
Like a solitary tree on the mountain,

We want a tree stand alone.

तुम अकेले खड़े रहो। सुख आयेगा, दुःख आयेगा। निराशा आयेगी, आशा आयेगी। किसी के साथ उन सबका बँटवारा न करते हुए सबको हजम करते हुए अकेले खड़े रहो। पर्वत की चोटी पर पेड़ की तरह अकेले खड़े रहो। जो चोटी पर अकेला ही खड़ा रह सकता है वही कोई बड़ा काम कर सकता है। अकेलापन बड़प्पन की कीमत है। यह कीमत देना यदि सम्भव नहीं तो नीचे की तराई में जो हजारों पेड़ हैं उनके साथ रहो, लेकिन यह आशा मत करो कि चोटी के एक मात्र पेड़ में हमारी गिनती होगी। यदि नेतृत्व करना है, कार्यकर्ता के रूप में रहना है तो उसकी कुछ कीमत भी चुकानी पड़ती है।

आजकल का दिमाग इसके कुछ विपरीत है। कुछ लोग ऐसा सोचते हैं, खासकर उस क्षेत्र के लोग, जिस क्षेत्र में राजनीतिकरण (Politicalisation) बहुत हुआ है। वास्तव में पालिटिकलाइजेशन यह शब्द उतना उपयुक्त नहीं है, पालिसाइजेशन (Policisation) शब्द ज्यादा ठीक है, किन्तु पालिटिकलाइजेशन शब्द चल पड़ा है। लोग समझते हैं कि इस सबकी कोई जरूरत नहीं है। क्योंकि स्वयं अपने को ठीक करना बड़े कष्ट का काम होता है। लोगों को दुरुस्त करने के लिए उपदेश देना बहुत सरल है। लेकिन जहाँ पालिटिकलाइ-जेशन ज्यादा है वहाँ लोग सोचते हैं कि इतने कष्ट किसलिए उठाये जायें। प्रभाव जमाने वाला व्यवहार रखने से ही काम चल जायेगा। मौका पड़ने पर लच्छेदार भाषण या अच्छा सम्भाषण करने से लोगों पर प्रभाव जम जायेगा। नेतृत्व प्राप्त हो जायगा। अपने अन्दर गुणों का विकास करने का कष्ट उठाने की क्या आवश्यकता है ? यह सब कौन करेगा ? इसलिए वे सोचते हैं कि कोई कीमत न देना पड़े और लोग आसानी से नेतृत्व स्वीकार कर लें, अनुगामी बन जायँ। कहते हैं कि राजनीति में यह सब चलता है। नेता कैसा भी रहे, मंच पर आकर लच्छेदार भाषण दे सके तो उसकी जय-जयकार होती है। लोग यह नहीं सोचते हैं कि भाषण का स्वरूप क्या है, और क्या यह केवल मनोरंजन करने वाला भाषण है। वहाँ तालियाँ बजती होंगी। किन्तु जिस भाषण के कारण लोग आत्मसमर्पण और त्याग करने को तैयार नहीं होते, क्या उस भाषण को प्रभावी कहा जा सकता है ? क्या उसको प्रेरणादायक कहा जाय ? यदि ऐसा नहीं तो तीन घण्टा

सिनेमा देखने में और नेताजी का भाषण सुनने में क्या अन्तर है? इस प्रकार के भाषणों में लोग प्रेरणा लेने नहीं, मनोरंजन करने आते हैं। और राजनीतिक लोग समझते हैं कि प्रभाव जमाने वाला हिसाब-किताब करने मात्र से उनका नेतृत्व स्थापित हो जायेगा। अपनी छवि चमकाने का काम करेंगे, लेकिन खुद को अच्छा बनाने का काम नहीं करेंगे, क्योंकि उसमें कष्ट होता है। जब लोगों को नजदीक फटकने नहीं देंगे तो वे गुण-दोष जानेंगे ही क्यों? कार्यकर्ता ज्यादा नजदीक रहेगा तो गुण-दोष उसकी समझ में आयेंगे। उसको भी नजदीक फटकने नहीं देंगे। वह केवल पब्लिक प्लेटफार्म पर ही आयेगा। व्यक्तिगत चारित्र्य और गुण-दोष क्या है, किसी को पता ही नहीं चलेगा। वह सोचता है कि अपने सभी दोषों को यदि वह छिपा सकता है तो क्या वजह है कि उसका इम्प्रेशन खराब हो। यह बहुत ही सस्ता विचार आजकल लोगों के दिमाग में बैठा हुआ है।

प्रभाव जमाने के लिए छोटे-छोटे हथकण्डे भी अपनाए जाते हैं। हमारे मजदूर क्षेत्र में भी कुछ लोग उसका इस्तेमाल करते हैं। उत्तर प्रदेश में एक बड़ा शहर है। वहाँ के एक बड़े नेता हैं। वह इस तरह के बहुत बड़े हथकण्डेबाज हैं। तत्काल अपना इम्प्रेशन जमा देते हैं। लेकिन वह यह नहीं जानते कि इस प्रकार की बनाई हुई सतही छवि थोड़े समय के लिए तो चल सकती है, लम्बे समय तक नहीं चलती। वे चुनाव जीतकर संसद् सदस्य हो गए। उनके वहाँ कई फैक्ट्रियाँ हैं, जहाँ वह नेता हैं। एक दिन उनके घर पर फोन खटखटाया। एक फैक्टरी में कुछ गड़बड़ हो गई थी। फैक्टरी के दरवाजे पर मजदूर इकट्ठा हो गए थे। फोन पर सूचना मिली, तुरन्त चले गए। मजदूरों की मीटिंग में भाषण किया—"भाइयो, वास्तव में मेरे लिए यहाँ आना बहुत कठिन था। मेरी माताजी की आज सुबह मृत्यु हो गई। उनका शव आँगन में पड़ा हुआ है। मेरे सारे रिश्तेदार व पड़ोसी वगैरह आए हुए हैं। वे यह कह रहे थे कि पहले शवदाह करिये, फिर कहीं जाइए। मैंने कहा, "नहीं, माताजी का शव तो राह देख सकता है, लेकिन मेरा मजदूर इस समय दुःख-दर्द में है, मैं राह नहीं देख सकता। मैं जाऊँगा।" सचमुच नेता हो तो ऐसा हो। खूब तालियाँ बजीं। उस दिन उस फैक्टरी में कुछ खटपट हो गई थी। यह समाचार सुनने के बाद उसी इण्डस्ट्री की चार-पाँच फैक्टरी के कुछ प्रमुख लोग

भी साइकिल वगैरह के साथ वहाँ आ गए थे। ज्यादा नहीं, पन्द्रह-बीस रहे होंगे। उन्होंने भी भाषण सुना और अच्छा प्रभाव लेकर गए।

ये जो छवि बनाने (Image building) वाले लोग होते हैं, कभी-कभी उनकी स्थिति बड़ी विचित्र हो जाती है। उन्हें शायद इस विचार सूत्र का पता नहीं होता कि गुनाह करने वाला आदमी एक बार गुनाह करता है और जब वह हज्म हो जाता है तो उसका हौसला भी बढ़ जाता है। फिर ज्यादा हौसले के साथ दूसरी बार और बड़ा गुनाह करता है। और फिर और हौसला बढ़ता है तो उससे भी बड़ा गुनाह करता है। हौसला बढ़ने के साथ-साथ उसकी सावधानी कम होती जाती है। फिर कुछ न कुछ सुराग वह छोड़ देता है और इस असावधानी के कारण वह पकड़ा जाता है। उन्हें शायद इसका पता नहीं था। महीने के बाद वह एक बार फिर दिल्ली से आये और उसी इण्डस्ट्री की किसी दूसरी फैक्टरी में फिर गड़बड़ हो गई। वे फिर वहाँ पहुँच गए और यह भूल गए कि उन्होंने पहले क्या भाषण दिया था। वहाँ उनका भाषण शुरू हुआ। वही पुराना रिकार्ड लगाया। बोले, "भाइयो, मेरी माँ की आज मृत्यु हो गई। लोगों ने कहा, कहाँ जाते हो? मैंने यह कहा कि मजदूर दुःख में है, मैं राह नहीं देख सकता। माता का शव आँगन में पड़ा है और मैं चला आया", वगैरह-वगैरह। पहले वाले भाषण में जो दस-पन्द्रह लोग साइकिल से आये थे, वे भी इस मीटिंग में उपस्थित थे। लोगों ने तालियाँ तो बजायीं, लेकिन बाद में पूछा कि इनके पिताजी ने क्या दो बार शादी की थी? एक माता की मृत्यु महीने भर पहले हुई, दूसरी माता की मृत्यु आज हुई, क्या बात है? भण्डाफोड़ हो गया। जो लोग यह समझते हैं कि तिकड़मबाजी से प्रभाव जमा लेंगे, उनका ऐसा ही होता है।

इसी प्रकार का एक दूसरे नेता का उदाहरण भी है। मैं उस समय राज्यसभा सदस्य था। उन्होंने अपने घर वालों को निर्देश दे रखा था कि उनके चुनाव क्षेत्र का कोई भी सम्पर्क करे तो उसे समय दे देना। मजदूरों के दो ग्रुप अलग-अलग मामले लेकर आये। एक ग्रुप को उनकी पत्नी ने दो बजे का समय दे दिया, दूसरे को चार बजे का। सांसद महोदय संसद् से १२.३० बजे घर आ गए। भोजन किया। आराम किया। घण्टी बजी तो वे शयनकक्ष से सीधे दरवाजे पर नहीं आए। क्योंकि उन्होंने एक ऐसी प्रथा बनायी थी कि सोने के कमरे से

भोजनालय होकर वे बाहर आते थे। भोजनालय में एक मेज पर एक थाली हमेशा रखी रहती थी, जिसमें दाल-चावल हमेशा रखा रहता था। वे भोजनालय की तरफ गए और दाल-चावल में हाथ फेरा, फिर दरवाजा खोला। दरवाजा खोलते ही बोले, आइए, आइए। उस ग्रुप के साथ बैठ गए। हाथ में दाल-चावल लगा हुआ था। इससे यह तो स्पष्ट ही था कि वे भोजन कर रहे थे। बेचारे मजदूर कहने लगे, नेताजी, आप पहले भोजन कर लीजिए, फिर बात करेंगे। वे बोले—नहीं, नहीं, आप इतनी दूर से आए हैं, मैं भोजन करने में क्यों आपका समय खराब करूँ। आप पहले अपनी बात बताइये। इससे मजदूरों पर बड़ा इम्प्रेशन पड़ा। बात कुछ ऐसी थी कि संसद् जाकर सेक्रेटरी से बात करके उन्हें बताना था। शाम को उन मजदूरों को वापस जाना था। नेताजी ने कहा, ठीक है, आप लोग पाँच बजे आ जाइए। मैं अभी संसद् जाऊँगा, सेक्रेटरी से बात करूँगा, और वे अन्दर चले गए। उसके बाद चार बजे वाला ग्रुप आया। तब तक वे सो रहे थे, जैसे ही घण्टी बजी वे सोने के कमरे से उठे, सीधे भोजनालय गए, दाल-चावल में हाथ फेरा, फिर दरवाजा खोला। बोले, "आइए, आप लोग बैठिये। मैं अभी संसद से आया, बड़ा लम्बा सेशन था। लेकिन कोई बात नहीं, आप बताइए क्या सेवा करूँ।" मजदूरों ने कहा, पहले आप भोजन तो कर लीजिए। वे बोले, नहीं-नहीं, पहले आपकी बात सुनेंगे। आप इतनी दूर से आए हैं। भोजन तो बाद में भी हो जायेगा। उस बार भी इम्प्रेशन अच्छा पड़ा। यह बात हमारे ख्याल में इसलिए आई कि मैं उस समय एम० पी० कैण्टीन में चाय के लिए बैठा था। जिनको उन्होंने पाँच बजे का समय दिया था, वे थोड़ा पहले आये थे। इसलिए समय बिताने के लिए कैण्टीन में चाय पीने बैठ गए। मैं पास की दूसरी टेबल पर बैठा था। इतने में चार बजे वाला ग्रुप भी वहाँ आ गया। पहले वालों को देखा तो पूछा, "क्यों भाई, तुम कब आए ?" टेबल पर बैठ गए तो बातचीत में नेताजी की बात निकली। चार बजे वाले ग्रुप ने बताया, "साहब, इतने एम० पी० हैं, लेकिन इतनी मेहनत लेने वाला एम० पी० और कोई नहीं दिखाई देता। मजदूरों के बारे में उनके मन में बड़ी हमदर्दी है।" पहले वालों ने पूछा—"क्या हुआ ?" वे बोले, "हम जब गए तो वे बेचारे भोजन कर रहे थे, अभी-अभी पार्लियामेण्ट से आये थे। उन्होंने भोजन भी पूरा नहीं

किया व जूठे हाथ हमारी बात सुनने बैठ गए।" जब वे यह बात कह रहे थे उस समय दो बजे के ग्रुप वाले एक दूसरे की तरफ देखने लगे। बाद वालों ने पूछा, "बात क्या है, आप लोग इस तरह क्यों देख रहे हैं ?" उन्होंने कहा, "अजीब बात है, जब हम दो बजे गए थे, तब भी वे पार्लियामेण्ट से आये थे और भोजन कर रहे थे। आप चार बजे गए तब भी भोजन कर रहे थे। दो-दो बार भोजन कैसे हो सकता है ?" भण्डाफोड़ हो गया।

एक अन्य नेताजी विदेश के दौरे पर गए। उनके बाद वहाँ मेरा दौरा हुआ। तब इस बात का पता चला कि वे वहाँ के भारतीय लोगों से मिले। देश के बारे में चर्चा हुई। वहाँ एक तकनीकी विशेषज्ञ थे, उन्होंने विकास की कोई योजना बतायी। नेताजी विशेषज्ञ तो नहीं थे, लेकिन उन्होंने बार-बार सवाल पूछकर वह स्कीम ठीक ढंग से समझ ली। वैसे वे बड़े नेता थे। उनको तिकड़मबाजी की कोई आवश्यकता नहीं थी। जिस देश में वे गए थे वहाँ के सभी भारतीय उनकी इज्जत करने के लिए बड़े उत्सुक थे। किन्तु उन्हें छवि निर्माण की आदत लग गई थी। जब वहाँ से वे दूसरे शहर में गए तो वहाँ के भारतीय लोग उनसे मिलने आए। बात करते-करते उन्होंने पहले स्थान के आदमी ने जो योजना समझायी थी उसे उन्होंने लोगों के सामने रखा और कहा कि "मेरे मन में यह कल्पना आयी कि ऐसी-ऐसी योजना रहे तो कैसा रहेगा ? लोगों पर इसका बहुत अच्छा प्रभाव हुआ कि नेताजी कितने रचनात्मक नेता हैं। उन्हें टैक्नालॉजी का अच्छा ज्ञान है। उन्हें आठ-नौ जगह जाना था। सभी जगह इसी तरह का इम्प्रेशन हुआ। लेकिन दौरा करते-करते वे भूल गए कि यह योजना उनको किसने बताई थी। हिन्दुस्थान वापस आने के लिए उन्हें फिर से वहीं आना था, पहले जिनके यहाँ ठहरे थे। अपनी आदत के अनुसार बातचीत के दौरान उन्होंने उसी आदमी से कहा, "मेरे मन में एक कल्पना आई है। बताइए, आपकी इस पर क्या राय है ?" और पूरी योजना उसके सामने पेश कर दी। बाद में जब मैं वहाँ गया तो मेरा उसी व्यक्ति के यहाँ निवास था। उसने मुझे पूरा विवरण बताया और कहा कि मुझे बहुत दु:ख हुआ और गुस्सा भी आया कि इतने बड़े आदमी किसलिए इस तरह का व्यवहार करते हैं ?

अतएव इमेज बिल्डिंग वाला मामला एक खतरनाक खेल है। एक

तो यह सफल होता नहीं और सफल हो भी गया तो ज्यादा देर तक टिकता नहीं। जहाँ जीवन भर का अपना लम्बा सम्बन्ध आता है वहाँ यह झूठी इमेज कैसे चलेगी ? एक दिन का ही नेतृत्व करना है क्या ? परसों अखबार में खबर आई कि एक चपरासी ने अपनी इमेज बिल्डिंग करके शादी की। जिस लड़की से उसे शादी करनी थी उसके रिश्तेदारों को बताया कि मैं बेंक में आफिसर हूँ। उन बेचारों को असलियत का पता नहीं, शादी हो गई। लेकिन बाद में असल बात का पता चला तो वहाँ झगड़ा हो गया। सब गड़बड़ हो गया, उसे छोड़कर भागना पड़ा।

अमेरिका के राष्ट्रपति चुनाव का यह अनुभव है कि वहाँ प्रचार संस्थाओं को ठेका दिया जाता है कि राष्ट्रपति उम्मीदवार की छवि निर्माण करो और तरह-तरह से छवि निर्माण की जाती है। लेकिन आधे से ज्यादा राष्ट्रपतियों के बारे में अनुभव यह है कि उनका कार्यकाल समाप्त होने से पहले ही उनकी छवि भी समाप्त हो गई। केवल छवि अच्छी करने से कार्य नहीं होता। जहाँ जीवन भर कार्य करना है वहाँ स्वयं को अच्छा बनाना पड़ेगा। इसलिए जो श्रेष्ठ लोग हैं वे छवि निर्माण के चक्कर में नहीं पड़ते। ओलीवर क्रामवेल ऐसे ही श्रेष्ठ लोगों में से था। इंग्लैण्ड का प्रमुख होने के पश्चात् एक बार उसके मन में विचार आया कि अपना एक अच्छा चित्र बनवाना चाहिए। एक अच्छे कलाकार को बुलाया और कहा कि मेरा चित्र बनाओ। उन दिनों फोटो वगैरह निकालने की तकनीक नहीं थी। किन्तु वह ऐसा कलाकार था जो एक बार देख लेने के पश्चात् चित्र बना सकता था। किन्तु उस कलाकार का प्राण संकट में पड़ गया। क्योंकि ओलीवर क्रामवेल के चेहरे पर मस्सा था। उस मस्से के कारण उसका चेहरा बहुत ही कुरूप दिखाई देता था। वह चिन्तित हो उठा कि इंग्लैण्ड के लार्ड प्रोटैक्टर यानी अधिनायक के चित्र में मस्सा आयेगा तो चित्र बड़ा कुरूप दिखेगा और ऐसा कुरूप चित्र मैं उसको दिखाऊँगा तो वह मुझ पर गुस्सा हो जायेगा। कहीं फाँसी की सजा न दे दे। इसलिए अपनी सुरक्षा के लिए उसने चित्र में से मस्सा निकालकर क्रामवेल को भेंट किया तो उसने अपना वह प्रसिद्ध वाक्य कहा—"Worm and all that"। नहीं, नहीं, इस मस्से के साथ मेरा चित्र बनाओ। मैं जैसा हूँ वैसा ही चित्र में भी दिखाओ। उसमें कोई

सुधार मत करो। जो आत्मविश्वासपूर्ण और हिम्मत वाले लोग रहते हैं वे ही कहते हैं कि मैं जैसा हूँ वैसा ही लोगों को दिखाना चाहिए। बनाई हुई नकली इमेज ज्यादा नहीं चलती।

दूसरी बात भी ख्याल रखना आवश्यक है। जो लोग यह समझते हैं कि हम तिकड़मबाजी से प्रभाव जमाकर सफलता प्राप्त कर लेंगे, वे भ्रम में रहते हैं। यदि यह मान भी लिया जाय कि हम अपने दोष छिपाने में १०० प्रतिशत सफल हो गए तो भी भगवान के दरबार का न्याय ऐसा है कि वहाँ केवल लच्छेदार भाषण से प्रभाव नहीं हो सकता। इस सन्दर्भ में एक बड़ी अच्छी घटना है। उमर नाम के एक खलीफा हो गए। वे बहुत ही उदार थे। उनके बारे में कहा जाता है कि कोई भी व्यक्ति जब चाहे उनके पास पहुँच जाता था। एक बार एक बुढ़िया अपने नाती को लेकर उनके पास आयी। कहा कि यह बीमार है, हकीम ने इसको देखा है, दवाई दी है। कहा है कि मीठी चीज खाना बन्द कर दे लेकिन यह हमारी बात मानता ही नहीं। आप इसे समझाइये कि मान जाय। उमर ने कहा—ठीक है, आप इसे पन्द्रह दिन बाद ले आइए। बुढ़िया चली गई। पन्द्रह दिन बाद फिर आई तो उमर ने कहा कि बेटा, मीठी चीज मत खाना। बच्चा बोला, ठीक है, नहीं खाऊँगा। बुढ़िया को आश्चर्य हुआ कि यदि यही एक वाक्य कहना था तो फिर इसके लिए पन्द्रह दिन क्यों लगाये। उसके पूछने पर उमर ने कहा, "इसका कारण था कि जब तुम मीठी चीज न खाने की बात कर रही थीं उस समय मुझे भी मीठी चीज का चसका था। इस कारण मैं उस दिन इसको मीठा न खाने को कहता तो इस पर मेरी वाणी का प्रभाव न होता। मैंने पन्द्रह दिन का समय इसलिए माँगा कि तब तक मीठा खाना छोड़ सकूँ। मैंने छोड़ दिया। अब यह मेरा कहना जरूर मान लेगा। इस पर मेरे कहने का प्रभाव जरूर होगा।" हमारे जो भी गुण-दोष हैं, हम उन्हें छिपाने की कोशिश भले करें लेकिन उनका व्यवहार और वाणी पर अच्छा-बुरा सभी दृष्टि से प्रभाव होता है। मेरी आपसे प्रार्थना है कि शार्टकट अपनाते हुए इम्प्रेशन जमाने वाली बात छोड़ दीजिए। तभी कार्य में सफलता प्राप्त होगी। स्वयं अपने को अच्छा करने का विचार ही उपयोगी और उत्तम होता है। यह विचार करें कि हम इमेज अच्छी बनाने का विचार नहीं, स्वयं अपने को कैसे अच्छा बना सकते हैं।

इसी में से भगवान बाकी सब बातें कर देता है।

आत्मविकास का कोई विकल्प नहीं है। यह बात हम भलीभाँति समझ लें। लेकिन आत्मविकास करना जितना कठिन है, उससे भी ज्यादा कठिन अपने विकास को कायम रखना है। क्योंकि जैसे मनुष्य आत्मविकास करता है, उसका प्रभाव बढ़ता है, काम बढ़ता है, प्रतिष्ठा बढ़ती है, मान्यता बढती है तो मनुष्य के मन में परिवर्तन होने लगता है। यह परिवर्तन बहुत धीरे-धीरे होता है। एकदम परिवर्तन हो जाय तो पता चल जाय। पहले प्रतिष्ठा नहीं थी, अब है। पहले पैसा नहीं था, अब है। पहले कार्यालय नहीं था, अब है। पहले समाचारपत्र में प्रसिद्धि नहीं थी, अब है। परिवर्तित परिस्थिति में अपनी अच्छाई को बनाए रखने में विशेष प्रयास करना पड़ता है। यह लोगों के ख्याल में नहीं रहता। वे कहते हैं कि हम अच्छे कार्यकर्ता हैं, अच्छे ही रहेंगे। लेकिन धीरे-धीरे परिवर्तन होने लगता है। एक उदाहरण बताता हूँ। बहुत दिन हुए, एक पिक्चर आई थी। उसका नाम था माया मछिन्दर। स्वामी मछिन्दर नाथ सम्प्रदाय के आद्य प्रवर्तक थे। वह अकेले भीख माँगते थे। भीख माँगते-माँगते एक राज्य की रानी के यहाँ भीख माँगने चले गए। रानी उन पर मोहित हो गई। उसने कहा, "योगीराज ! आप यहीं रुक जाइये।" वे बोले— "मैं यहाँ नहीं रुक सकता। मैं तो योगी पुरुष हूँ।" रानी चतुर थी। उसने कहा, "अच्छा, तो यह बात है। आपको अपने बारे में आत्म-विश्वास नहीं है। आपको लगता है कि हमारे यहाँ रहने से आपका स्खलन होगा।" मछिन्दर बोले, "नहीं-नहीं, ऐसा कैसे हो सकता है। मैं तो योगियों का गुरु हूँ।" रानी ने कहा, "अगर, इतना आत्म-विश्वास है तो यहाँ रहो।" उन्होंने वहाँ रहना स्वीकार कर लिया। मूल कथा में यह आता है कि वहाँ रहते-रहते और यह सोचते-सोचते कि मैं तो योगीराज हूँ, मेरे अन्दर कैसे अधःपतन हो सकता है, उनकी आदतें धीरे-धीरे बदलने लगीं। रानी ने ऐसी व्यवस्था की कि न वह बाहर जा सकें और न बाहर का कोई उनसे मिलने पाये। परिणामतः उनका सारा व्यवहार दूसरे ढंग का शुरू हो गया। इधर इनके शिष्य बहुत परेशान थे कि हमारे गुरु महाराज कहाँ गए। खोज करते-करते एक शिष्य उस गाँव में गया जहाँ मछिन्दर रह रहे थे। उनका रूप-आकार बताते हुए पूछताछ शुरू किया कि क्या कोई

संन्यासी इधर आया है। लोगों ने बताया कि संन्यासी तो नहीं, एक जोगड़ा आया है जो रानी के यहाँ ऐश कर रहा है। शिष्य को बड़ा दुःख हुआ। अब उनसे मिलने की तरकीब खोजने लगा। रानी ने तो ऐसी व्यवस्था की थी कि किसी को मिलने नहीं देना। किन्तु उनके शिष्य तो संन्यासी थे, उनको भिखारी का वेश लेने में क्या लगता था। भिखारी के वेश में उनके शिष्य गोरखनाथ और शेष साथी भीख माँगने के लिए राजद्वार पर गए। जब वे भीख माँगने अन्दर गए तो उन्हें यह देखकर बड़ा धक्का लगा कि वहाँ बगीचे में झूले पर बैठे रानी और मछिन्दरनाथ झूल रहे थे। अपने गुरु महाराज की यह स्थिति देखकर उसे दुःख हुआ। भीख माँगने के लिए उन्होंने ढोलक बजाना शुरू किया। ढोलक की ढम-ढम के शब्दों के बीच गोरखनाथ ने कहना शुरू किया, "चलो मछिन्दर गोरख आया, चलो मछिन्दर गोरख आया।" मछिन्दर ने सोचा मेरा शिष्य, मेरा 'गटनायक' यहाँ भी छुट्टी देने को तैयार नहीं। वह यहाँ भी पहुँच गया जबकि यहाँ मैं बड़े आराम से रहता हूँ। किन्तु बाद में उनको पश्चात्ताप हुआ और रानी के यहाँ से अपने शिष्यों के साथ भाग गए। इस प्रकार आदमी का स्खलन इतना धीरे-धीरे होता है कि उसे पता तक नहीं चल पाता। वह कहता है, इतनी जरा सी बात से क्या होता है। एक कहानी है मार्च हिम। उसमें भी यह बताया गया है कि अच्छे आदमी का अधःपतन कैसे होता है। वह हर अवस्था पर यह सोचता है कि इतने से क्या होता है। इतना नीचे जाना तो आवश्यक ही है। इस प्रकार अपने को न्यायोचित सिद्ध (Self-justify) करते-करते आदमी कितने नीचे चला जाता है, इसकी वह कल्पना भी नहीं कर सकता। मान्यता और पद-प्रतिष्ठा प्राप्त होने के पश्चात् अपने को अच्छा कार्यकर्ता बनाये रखने के लिए यदि सतर्कतापूर्वक प्रयास नहीं किया तो अच्छा बना रहना कठिन होगा।

ऐसा दिखाई देता है कि दूसरे लोग कोई कार्य नहीं करते, फिर भी उनका प्रचार होता है। और भारतीय मजदूर संघ वाले कहते हैं कि ठोस कार्य करना चाहिए। लेकिन बगैर प्रचार के काम नहीं चल सकता। जैसा हम लोगों ने पहले से कहा है कि आवश्यकता पर आधारित (Need based) न्यूनतम मजदूरी की जरूरत है वैसे ही आवश्यकता पर आधारित प्रचार (Need based publicity) की

जरूरत है। कार्य की वृद्धि के लिए प्रचार की आवश्यकता है, यह ठीक विचार है। किन्तु जब धीरे-धीरे प्रचार होने लगता है तो फिर अपनी खबर नित्य पढ़ने को मिले, यह एक भावना आ जाती है। धीरे-धीरे अपनी फोटो अखबार में देखने का शौक हो जाता है। अपनी आवाज कैसेट में सुनने की इच्छा जाग्रत होती है। इसको कहते हैं 'नार्किसस भाव' ग्रीक पुराण में एक कहानी है। नार्किसस नाम का एक अठारह-उन्नीस साल का लड़का था। वह अतीव सुन्दर था। उसका सौन्दर्य नारी-स्वरूप का था। उन दिनों शायद आइने नहीं होते थे, इसलिए उसने अपना स्वरूप कभी देखा ही नहीं था। एक बार वह जवान लड़का एक निर्झर के पास से होकर जा रहा था तो लकड़ी की पट्टी पर से उसने नीचे के शान्त पानी में अपना स्वरूप देखा और अपने सौन्दर्य पर आसक्त हो गया। उसकी इच्छा हुई कि अपनी सुन्दरता के साथ अपना मिलन होना चाहिए। स्वयं का स्वयं के साथ में तो मिलन नहीं हो सकता, इसलिए अपना ही चिन्तन करते-करते विरह वेदना के कारण उसकी मृत्यु हो गई। यूरोप में उन विशिष्ट फूलों को, जो नदी के किनारे रहते हैं व जिनका प्रतिबिम्ब नदी में पड़ता है, 'नार्किसस' का फूल कहते हैं। अपने ही प्रतिबिम्ब पर आसक्त व उसके साथ अपना विलीनीकरण होने की बेचैनी को 'नार्किसस भाव' कहते हैं। अपनी फोटो देखी जाये, अपनी खबर पढ़ी जाये, अपनी आवाज सुनी जाये—यह नार्किसस भाव का ही एक रूप है। फिर धीरे-धीरे यह मूल बात भूल जाती है कि प्रचार कार्य की वृद्धि के लिए किया जाना चाहिए। अपितु प्रचार के लिए जितना आवश्यक होता है उतना ही कार्य किया जाता है। वक्तव्य छपता रहे, केवल इतना ही बाकी बच जाता है। धीरे-धीरे अनजाने ही यह परिवर्तन हो जाता है।

पहले अपने पास पैसा नहीं था। पैसा न होने के कारण हम पोस्टर नहीं छाप सकते थे। पर्चे नहीं बाँट सकते थे। अत्यन्त आवश्यक वस्तुओं का भी प्रबन्ध नहीं कर सकते थे। दुःख होता था कि पैसा नहीं है इसलिए काम रुक गया। धीरे-धीरे यूनियन का कार्य बढ़ा। पैसा आ गया। अच्छा बेंक-बैलेंस भी हो गया। जब पैसा प्रचुर होता है तो धीरे-धीरे सोच में परिवर्तन आता है। आदमी सोचने लगता है कि वैसे तो फर्स्ट क्लास में नहीं जाना चाहिए, लेकिन

बुखार है और जाना भी आवश्यक है। द्वितीय श्रेणी में जाऊँगा तो बुखार बढ़ जायेगा। स्वास्थ्य गड़बड़ हो जायगा। काम की दृष्टि से फर्स्ट क्लास में जाना आवश्यक हो तो जरूर जाना चाहिए। किन्तु कभी-कभी ऐसा भी होता है कि जैसे कल दिल्ली पहुँचना है, आज यहाँ कोई खास कार्य नहीं है। लेकिन कोई मित्र आ गये। व्यक्ति सोचता है कि बाद में चले जायेंगे। आज तो मित्रों के साथ महफिल बैठेगी। ट्रेन से न जाते हुए कल आराम से हवाई जहाज से जायेंगे। यूनियन के पास पैसा है। आखिर यह भी तो आवश्यक है कि मित्रों के साथ रहा जाय। यानी इसका भी औचित्य ढूंढ़ लेता है। ट्रेन के बजाय प्लेन से जाना आवश्यक हो जाता है। इस प्रकार औचित्य सिद्ध करते-करते आज की विलासिता धीरे-धीरे आवश्यकता बन जाती है।

हमारे एक मित्र हमारे साथ ही हाथ में लोटा लेकर सुबह नित्य कर्म के लिए कभी जंगल में जाते थे। मगर संसद् सदस्य हो जाने के बाद उनका हाल देखा तो आश्चर्य हुआ। आपातकाल में वेशान्तर करके हम इधर-उधर घूमते थे। वे भी साथ थे। उनको फ्लश लैट्रिन के बगैर टट्टी नहीं होती थी। मैंने कहा, आप में कितना परिवर्तन हो गया। आप और मैं लोटा लेकर जंगल में जाते थे, खेत में जाते थे, दोनों को टट्टी होती थी। अब क्या हो गया जो बगैर फ्लश लैट्रिन के आपको टट्टी नहीं होती। अब फ्लश लैट्रिन जीवन की आवश्यकता हो गई। यह परिवर्तन किसी प्रामाणिकता की कमी के कारण नहीं होता। यह अधःपतन जान-बूझकर भी नहीं होता। यह परिवर्तन स्वयं अपना समर्थन और स्वयं का औचित्य सिद्ध करते-करते धीरे-धीरे होता है। पहले हमारे पास कार्यालय के नाम से एक कमरा भी नहीं था। हमारी मुश्किल होती थी। हम दस जगह जाते हैं। वहाँ के लोग जब हमारे यहाँ आते हैं तो उनको सोने के लिए हम जगह दे सकें, इतनी भी जगह अपने पास नहीं थी। हमारा सत्कार वे करते हैं। हमको खिलाते-पिलाते हैं। लेकिन हमारे पास ऐसा कोई रसोई घर नहीं, जहाँ हम अपनी ओर से उन्हें खाना खिला सकें। बड़ा दुःख होता था। धीरे-धीरे यूनियन का काम बढ़ा। पैसा-प्रतिष्ठा बढ़ी। कार्यालय तो आवश्यक है ही। इससे कौन इनकार कर सकता है। पहले कार्यालय होता है। फिर धीरे-धीरे लगता है कि कार्यालय जरा

बड़ा होना चाहिए। फिर लगता है कि रहना ही है तो यहाँ हर प्रकार की सुविधा होने में आपत्ति क्या है। धिर धीरे-धीरे लगता है कि अपना एक अलग से कमरा होना चाहिए जिससे अपने कागजात व्यवस्थित, सुरक्षित और अलग रहें। अपने कपड़े अलग रहेंगे, उसमें ताला लगा रहेगा तो कोई गड़बड़ नहीं होगी। इसके कारण मन भी स्वस्थ रहेगा। अपना अलग कमरा, अलग बिस्तर होना चाहिए। अर्थात् व्यवस्था (Establishment) के साथ व्यवस्थाजन्य मनोवृत्ति (Establishment mentality) भी आती है। आदमी प्रामाणिक है। यदि चीनी मोर्चे पर लड़ाई शुरू हो जाय और ऊपर से आदेश आये तो वहाँ जाने के लिए अपना नाम पहले लिखायेगा, पर अपने बिस्तर पर किसी को बैठने नहीं देता। मोर्चे पर मरने की तैयारी है, लेकिन बिस्तर पर किसी को बिठाने की तैयारी नहीं है। धीरे-धीरे आदमी में इसी प्रकार अनजाने ही परिवर्तन आ जाता है। यह स्वाभाविक है। ऐसा कम से कम हो, इसलिये हम प्रचार पर विशेष जोर नहीं देते, किन्तु ठोस कार्य पर हमारा पूरा जोर रहता है। ठोस कार्य करते हुए ही कार्यकर्ता अपने ऊपर निगरानी रख सकता है।

□□□